Bachelor of Arts

Semester –IV

Paper Code –

INDIAN GOVERNMENT & POLITICS – II

भारतीय सरकार और राजनीति – II

BACHELOR OF ARTS (SEMESTER-IV)
BHARTIYA SARKAR AND RAJNITI - II
PAPER CODE:

Marks: 80 Time: 3 Hrs

Note: Examiner will be required to set NINE questions in all, four in part 'A' and four in Part 'B'. In part C, Question No. 9 is compulsory, consisting of 8 objective type questions of 2 marks each spread over the entire syllabus. In addition to question no. 9, candidate will be required to attempt 4 more questions, selecting two questions each from part 'A' and 'B'.

Part-A

Union Government: President, Parliament, Cabinet and Prime Minister.

Part-B

The Election Commission Electoral Reforms. Major issues in Indian Political, Caste, religion. Language Region, Poverty- Alleviation.

Part-C

Eight Object type questions (multiple choice) spread over the entire syllabus.

Suggested Readings

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution : The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Allen & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 vols, New Delhi, Rediant Publishers,1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World, 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government aad Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Govemability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, BI Publications, 1974.
- A.C.Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parhament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher, New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.
- R. Thakur, The Government & Politics of India, London, Macmillan,1995.

Semester – IV

Syllabi – Book Maping Table

भारतीय सरकार और राजनीति –II

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
इकाई – 1	केन्द्रीय सरकार	5–64
	राष्ट्रपति भारतीय संसद तथा उसका कार्यकरण भारतीय प्रशासन में मंत्रिमण्डल की भूमिका प्रधानमंत्री	
इकाई – 2	भारत में चुनाव सुधार व भारतीय राजनीति में प्रमुख मुद्दे	65–136
	भारत में चुनाव सुधार जातिवाद धर्म एवं साम्प्रदायिकता भारतीय राजनीति में भाषा क्षेत्रीयतावाद गरीबी उन्मूलन	
इकाई – 3	वस्तुनिष्ठ प्रश्न राष्ट्रपति भारतीय संसद तथा उसका कार्यकरण भारतीय प्रशासन में मंत्रिमण्डल की भूमिका प्रधानमंत्री भारत में चुनाव सुधार जातिवाद धर्म एवं साम्प्रदायिकता भारतीय राजनीति में भाषा क्षेत्रीयतावाद गरीबी उन्मूलन	137–160

इकाई– 1

केन्द्रीय कार्यपालिका

1.0 इकाई परिचय

कानून बनाना, कानूनों को लागू करवाना तथा कानूनों की व्याख्या करना, उनका क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन करना सरकार के महत्वपूर्ण कार्य हैं। आधुनिक प्रजातांत्रिक देशों में, ये कार्य विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका द्वारा किये जाते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 के अन्तर्गत भारतीय संसद का गठन किया गया है। भारतीय संसद के अंतर्गत राष्ट्रपति और संसद के दो सदन सम्मिलित हैं। राष्ट्रपति राज्य का मुखिया एवं राष्ट्र का प्रतीक है। संविधान ने राष्ट्रपति को असीम शक्तियाँ प्रदान की हैं, लेकिन शासन करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। राष्ट्रपति केवल औपचारिक भूमिका निभाता है। जबकि प्रधानमंत्री के पास वास्तविक कार्यपालिका शक्तियाँ होती है। प्रधानमंत्री मंत्रीपरिषद के मुखिया होते हैं। राष्ट्रपति मंत्रीपरिषद की सलाह पर ही कार्य करते हैं। मंत्रीपरिषद् वास्तविकरूप में कार्यपालिका होती है न कि राष्ट्रपति। संसदीय सरकार का भूलभूत तत्व प्रधानमंत्री और इसके कैबिनेट का संसद के प्रति उत्तरदायी होना है। संसद शासन नहीं चलाती बल्कि सरकार की नीतियों का आलोचनात्मक परीक्षण करती है तथा इसके उचित और अनुचित मानकर कार्यों की समीक्षा करती है।

प्रत्येक इकाई में अभ्यास प्रश्न भी दिए गए हैं। प्रत्येक इकाई को पढ़ने के बाद आप इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास कर सकते हैं। पाठ्यक्रम के अंत में कुछ महत्वपूर्ण संदर्भ सूची भी दी गई है। आपको सलाह दी जाती है कि आप इसका इस्तेमाल करें।

1.1 इकाई के उद्देश्य

- राष्ट्रपति की शक्तियों का विश्लेषण करना।
- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की स्थिति की चर्चा करना।
- संसदीय प्रक्रियाओं की व्याख्या करना।
- भारतीय प्रशासन में मंत्रीमण्डल की भूमिका को समझना।
- राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया को समझना।
- राष्ट्रपति की शक्तियों व कार्यों को जानना।
- राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति को समझना।

1.2 राष्ट्रपति
(President)

1.2.1 परिचय

भारतीय संविधान द्वारा देश में लोकतन्त्रात्मक प्रभुसत्ता सम्पन्न समाजवादी धर्म–निरपेक्ष गणराज्य की स्थापना की गई है। गणराज्य के सिद्धान्त अनुसार संघीय स्तर पर राजनैतिक कार्यपालिका केरूप में राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री के दो महत्वपूर्ण पद हमारे संविधान निर्माताओं ने सृजित किये हैं। भारत में भी इंग्लैण्ड के समान शासन प्रणाली केरूप में संसदीय शासन पद्धति को अपनाया गया है, जिसके अन्तर्गत संवैधानिक कार्यपालिका केरूप में राष्ट्रपति होता है, जिसे राष्ट्र–अध्यक्ष का गौरव प्राप्त है। अम्बेडकर के कथानुसार हमारा राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है। उसका शासन में यह स्थान है कि उसके नाम पर राष्ट्र के निर्णय घोषित किये जाते हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति राज्य–शक्ति का प्रतीक अवश्य है, परन्तु वास्तविक शासक नहीं। संविधान की धारा 53 के अनुसार, ''भारतीय संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ भारत के राष्ट्रपति में निहित होंगी तथा वह इनका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा।'' तथा धारा 74 के अनुसार, ''राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् है, जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है और जो सामूहिकरूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

1.2.2 उद्देश्य

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति पद का विशेष महत्व है। इसके चार प्रमुख कारण है। प्रथम, राष्ट्रपति ऐसे समूह द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं, जिसमें सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधित्व का समावेश होता है। इसमें राज्यों के विधानमण्डलों के सदस्यासें के अतिरिक्त संसद के दोनों संदनों के सदस्यों को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीय, राष्ट्रपति के द्वारा जो शपथ ली जाती है वह संविधान की रक्षा केरूप में होती है। तीसरा, राष्ट्रपति के विरूद्ध संविधान में महाभियोग की व्यवस्था की गई है। चौथा, देश के प्रतिरक्षा बलों के प्रधान केरूप में राष्ट्रपति का महत्व और भी बढ़ जाता है।

1.2.3 राष्ट्रपति पद के लिए योग्यताएँ

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो।

(3) उसमें वे सभी योग्यताएं होनी चाहिए जो लोकसभा के सदस्य बनने के लिए आवश्यक हैं।

(4) वह किसी लाभ पद पर न हो, लेकिन इस नियम में कुछ अपवाद कर दिए गए हैंः–

(a) संघीय अथवा राज्य सरकार में मन्त्री होना।

(b) राज्य का गर्वनर होना।

(c) संघ का उप–राष्ट्रपति होना।

(d) संघ का राष्ट्रपति यदि पुनः निर्वाचन में खड़ा हो।

(e) संसद या विधानमण्डल का सदस्य चुनाव तो लड़ सकता है, लेकिन चुने जाने के बाद वह संसद या विधानमण्डल का सदस्य नहीं रह सकता। 1 फरवरी 1974 में संसद ने एक कानून पारित करके जिसके द्वारा राष्ट्रपति के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को 2500रूपये जमानत केरूप में जा

करवाने आवश्यक थे। इसके अलावा इस कानून के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार का नाम निर्वाचक मण्डल के 10 सदस्यों द्वारा प्रस्तावित और 10 सदस्यों द्वारा अनुमोदित होना जरूरी था। 5 जून 1997 में राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव के लिए जमानत की राशि 2500 से बढ़ाकर 15000रूपये कर दी गई। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार का नाम कम से कम 50 सदस्यों द्वारा प्रस्तावित तथा 50 सदस्यों द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक कर दिया गया।

- राष्ट्रपति का चुनाव
- कार्यकाल
- वेतन तथा भत्ते
- विशेषाधिकार
- कार्य तथा शक्तियाँ
- महाभियोग
- वास्तविक स्थिति

राष्ट्रपति का कार्यकाल

राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष है। वह पुनः भी चुना जा सकता है। संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति बार–बार निर्वाचित हो सकता है। इसके विपरीत अमेरिका के संविधान में राष्ट्रपति केवल दो बार ही इस पद पर रह सकता है। भारत के राष्ट्रपति का पद केवल तीन कारणों से रिक्त हो सकता है।

(1) यदि वह स्वयं त्याग पत्र दे दे।

(2) दुर्भाग्यवश उसका देहान्त हो जाए।

(3) उसे महाभियोग के द्वारा पद से हटा दिया जाए।

ऐसी स्थिति में उपराष्ट्रपति इस पद को ग्रहण कर लेता है। लेकिन 6 माह में नये राष्ट्रपति का चुनाव आवश्यक है। अगर नये राष्ट्रपति का चुनाव किसी कारणवश न हो सके तो पहले वाला राष्ट्रपति उस समय तक अपने पद पर बना रहेगा, जब तक उसका उत्तराधिकारी पद न संभाल ले। राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र लिखकर उपराष्ट्रपति को भेजना होता है तथा उपराष्ट्रपति को इसकी सूचना तुरन्त लोकसभा के स्पीकर को देनी पड़ती है।

वेतन तथा भत्ते

वर्तमान समय में भारत के राष्ट्रपति को 50000रूपए मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अलावा रहने के लिए निवास स्थान तथा कई भत्ते भी मिलते हैं। सेवानिवृत होने के बाद उसे 3 लाखरूपये वार्षिक पेंशन भी मिलती है तथा निःशुल्क आवास स्थान, कार, टेलीफोन, बिजली–पानी और सचिवालय की सुविधा भी प्रदान की जाती है। राष्ट्रपति का वेतन तथा सभी भत्ते संचित निधि से प्राप्त होते हैं, जिन्हें उसके कार्याकाल में कम नहीं किया जा सकता। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद तथा डॉ० राधाकृष्णन केवल 2500रूपये मासिक वेतन लेते थे। श्री नीलम संजीवा रेड्डी 3000रूपये मासिक वेतन लेते थे।

विशेषाधिकार

संविधान के अनुच्छेद 361 के अनुसार राष्ट्रपति को अपने अधिकारों तथा शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उसके कार्यकाल में उसको गिरफ्तार अथवा बन्दी नहीं बनाया जा सकता तथा उसके विरूद्ध फौजदारी कार्यवाही भी नहीं की जा सकती।

राष्ट्रपति के निजी कार्यों के लिए भी कोई दिवानी कार्यवाही या मुकदमा उसके विरूद्ध कम से कम दो महीने पहले नोटिस दिए बिना नहीं चलाया जा सकता।

राष्ट्रपति पर महाभियोग

इस विधि का वर्णन संविधान की धारा 161 में किया गया है। इस विधि के अन्तर्गत संसद के दोनों सदनों में से जो सदन आरोप लगाना चाहता है, उसको एक चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षरों सहित इस प्रस्ताव को राष्ट्रपति के पास 14 दिन पूर्व भेजना पड़ता है। जब सदन में महाभियोग विषय पर चर्चा चल रही होती है, तो राष्ट्रपति ऐसे समय पर स्वयं उपस्थित होकर या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा आरोपों का जवाब दे सकता है। यदि वह 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे तो दूसरा सदन उन आरोपों की जाँच करता है। यदि दूसरा सदन भी 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे तो दूसरा सदन उन आरोपों की जाँच करता है। यदि दूसरा सदन भी 2/3 बहुमत से उन आरोपों को सही मान ले, तो राष्ट्रपति को अपना पद रिक्त करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति का कार्यभार सम्भालता है। यदि उपराष्ट्रपति भी त्यागपत्र दे देता है या उसकी मृत्यु हो जाए तो सर्वोच्च न्यायालय का सर्वोच्च न्यायाधीश कार्यवाहक राष्ट्रपति केरूप में कार्य करता है। जैसे सन् 1969 में राष्ट्रपति जाकिर हुसैन की मृत्यु पर उपराष्ट्रपति वी०वी० गिरि के त्यागपत्र देने के कारण सर्वोच्च न्यायालय के सर्वोच्च न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला ने कार्यवाहक राष्ट्रपति केरूप में कार्य किया। लेकिन 6 महीने के अन्दर नए राष्ट्रपति का निर्वाचन अनिवार्य है। भारत में अभी तक किसी भी राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग प्रस्ताव नहीं लाया गया है। सन् 1970 में उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन के विवाद में राष्ट्रपति वी०वी० गिरि के विरूद्ध विपक्षी नेता मधु लिमये ने महाभियोग प्रस्ताव लाने का प्रयास किया था।

1.2.4 राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया

भारत के राष्ट्रपति के चुनाव के लिए संवैधानिक सभा के सामने कई प्रस्ताव रखे गए। पहला प्रस्ताव था कि चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्षरूप में किया जाए। इस पर विस्तार से विचार किया गया। यह देखने से तो लोकतान्त्रिक था, लेकिन कुछ समस्याएँ थी। जैसे इतने बड़े देश में जनता द्वारा चुनाव करवाना कठिन था। इसके लिए बहुत से कार्यकर्त्ता और धन की आवश्यकता पड़ती थी, जो भारत सरकार के लिए कठिन था। दूसरी बात, भारत में संसदीय प्रणाली है। इसलिए इसका राज्याध्यक्ष नाममात्र का होता है। जनता द्वारा निर्वाचित होने वाले अध्यक्ष को नाममात्र का अध्यक्ष रखना कुछ अजीब सा लगता है।

अतः वाद–विवाद और विचार–विमर्श के बाद यह निश्चित किया गया कि राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष ढंग से ही होगा। यह चुनाव एक निर्वाचक मण्डल के द्वारा किया जाएगा। जिसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों को भाग लेने का अधिकार है।

संविधान के दो अनुच्छेदों 54 ओर 55 में राष्ट्रपति के चुनाव की व्यवस्था की गई है। संक्षिप्तरूप में कहा जा सकता है कि भारत का राष्ट्रपति अप्रत्यक्षरूप में एक चुनाव मण्डल, जिसमें केन्द्रीय संसद तथा प्रान्तीय विधानपालिकाओं के चुने हुए सदस्य हैं। उनके द्वारा एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर गुप्त मतदान द्वारा चुना जाता है।''

1. मतों का मूल्यः निर्वाचन में भाग लेने वाले सदस्यों की वोटों को निश्चित कररने के लिए सूत्र अपनाए गए हैं, वे इस प्रकार हैंः–

$$\text{एम०एल०ए० की वोट की कीमत} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या}} \div 1000$$

उदाहरणः अगर किसी एक राज्य की जनसंख्या 300,00,000 है तथा उसके विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 300 है तो उस राज्य की विधानसभा के वोट का मूल्य होगा –

$$= \frac{300,00,000}{300} \div 1000 = 100$$

इस राज्य में प्रत्येक एम०एल०ए० के वोट की कीमत 100 होगी तथा राज्य की वोटों की कीमत $300 \times 100 = 30,000$ होगी। इसी प्रकार अन्य राज्यों में विधानसभा के सदस्यों के वोटों का मूल्य निकाल लिया जाता है। संसद के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य की वोट की कीमत इस प्रकार होगी –

$$\frac{\text{राज्य विधानसभाओं के सदस्यों के मतों का योग}}{\text{संसद के दोनों सदनों के चुने हुए सदस्य}}$$

उदाहरणः मान लो राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों के मतों की कुल संख्या 549511 तथा संसद के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 776 है तो प्रत्येक संसद सदस्य के वोट की कीमत होगी –

$$\frac{549511}{776} = 708$$

2. एकल संक्रमणीय मत प्रणाली – मतों की कीमत निश्चित करने के बाद चुनाव गुप्त पत्र द्वारा एकल संक्रमणीय मत प्रणाली के आधार पर किया जाता है। इस प्रणाली में निम्न बातें होती हैं –

   (i) प्रत्येक मतदाता को एक वोट देने का अधिकार है, लेकिन उसे उतनी प्राथमिकताएँ देने का अधिकार है, जितने व्यक्ति चुनाव लड़ रहे हैं।

   (ii) चुनाव में जीतने वाले उम्मीदवार को स्पष्ट (बहुमत) कोटा प्राप्त करना होता है। बहुमत (कोटा) निकालने की विधि इस प्रकार है–

$$\frac{\text{डाले गए कुल मतों की संख्या}}{\text{सीटों की संख्या} + 1} + 1$$

उदाहरणः अगर कुल मत 10,000 है तो कोटा होगा।

$$\frac{10000}{1+1} + 1 = 5001$$

मतों की गणना

सबसे पहले उम्मीदवारों की पहली पसंद के वोट को गिना जाता है। जो उम्मीदवार पहली बार निश्चित कोटा प्राप्त कर लेता है, उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यदि कोई उम्मीदवार निश्चित कोटा प्राप्त नहीं करता तो सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को चुनाव से बाहर कर दिया जाता है और उसके वोटों को वोटरों की दूसरी पसंद के अनुसार बाकी उम्मीदवारों को बांट दिया जाता है। वह तब तक चलता है जब तक एक उम्मीदवार को निश्चित कोटा नहीं मिल जाता।

अब तक हुए 12 राष्ट्रपति के चुनावों में से केवल एक बार ही वोटों का हस्तान्तर करना पड़ा है। ऐसा सन् 1969 में हुआ था। जब श्री देशमुख की वोटों के वितरण से श्री गिरी को स्पष्ट बहुमत मिला।

मतदान पूरी तरह गुप्त होता है। संसद सदस्य दिल्ली में या अपने राज्यों की राजधानी में वहाँ के विधानसभा के सदस्यों के साथ मतदान कर सकते हैं।

राष्ट्रपति पद के लिए पिछला चुनाव (12वां) जुलाई, 2002 को हुआ। इस चुनाव में इलैक्ट्राल कॉलेज की कुल सदस्य संख्या 4896 थी, और कुल 4785 वोड डाले गए जिनमें से वर्तमान राष्ट्रपति डॉ० अब्दुल कलाम को 4152 वोट मिले, जिनकी प्रतिशत संख्या 89.58 प्रतिशत थी। इस चुनाव में हारने वाले प्रत्याशी (लक्ष्मी सहगल) को 459 (10ण्42:) वोट मिले। इस चुनाव में इलैक्ट्राल कॉलेज के मतों का कुल मूल्य 1,07,366 था। इस चुनाव में 174 वोट अवैध पाए गए जिसमें 42 वोट संसद से थे।

राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवाद

मूल संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया था। चुनाव में प्रत्याशी रहा कोई भी उम्मीदवार अथवा कम से कम दस निर्वाचकों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में राष्ट्रपति के चुनाव को चुनौती दी जा सकती है। जिस प्रकार 1974 में राष्ट्रपति चुनाव से पहले गुजरात विधानसभा भंग हो चुकी थी। इस स्थिति में राष्ट्रपति ने 29 अप्रैल, 1974 को अनुच्छेद 143 के तहत सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांगा कि गुजरात विधानसभा भंग रहते, क्या राष्ट्रपति का चुनाव हो सकता है? मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में सात सदस्यीय संवैधानिक पीठ में इस प्रश्न पर विचार किया और 5 जून को व्यक्त विचार में कहा कि ''राष्ट्रपति के चुनाव वर्तमान राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व होने चाहिए और एक राज्य की विधानसभा भंग होते हुए भी ये चुनाव हो सकते हैं।'' परन्तु सन् 1975 में पास हुए संविधान के 39वें संशोधन द्वारा इस स्थिति में परिवर्तन किया गया कि राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों का फैसला सर्वोच्च न्यायालय की बजाय संसद कानून द्वारा किसी संस्था अथवा समिति की स्थापना करके करेगी। इसमें यह भी व्यवस्था की गई कि इस संस्था द्वारा दिया गया निर्णय अन्तिम होगा और उसे किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। परन्तु 43वें संविधान संशोधन द्वारा फिर इस बारे में परिवर्तन किया गया कि राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी संदेहों तथा विवादों की जाँच और निर्णय सर्वोच्च न्यायालय करेगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा। इसी आधार पर डॉ० जाकिर हुसैन तथा वी०वी० गिरि के चुनावों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने उनके चुनावों को वैध घोषित हुए याचिकाओं को रद्द कर दिया था।

राष्ट्रपति की चुनाव प्रणाली के दोष

(i) राष्ट्रपति के चुनाव की विधि अप्रजातान्त्रिक है, क्योंकि इसमें राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष तौर पर जनता द्वारा नहीं होता।

(ii) आम (साधारण) व्यक्ति के लिए यह चुनाव प्रणाली उसकी समझ से बाहर है। उचित यह होता कि इसको अधिक सरल व सहज रखा जाता।

(iii) राष्ट्रपति का चुनाव–प्रणाली के लिए 'अनुपातिक प्रतिनिधित्व' तथा 'एकल संक्रमणीय मत' शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जो गलत है। यह प्रणाली वहाँ अपनाई जाती है जहाँ बहल सदस्य निर्वाचित करने हों। संविधान सभा में सर्वश्री महावीर त्यागी, नजीरूद्दीन तथा बेगम अजीज रसूल ने इस चुनाव प्रणाली को आनुपातिक प्रतिनिधित्व का नाम देने पर भी आपत्ति जताई थी। एम०पी० शर्मा के अनुसार इस चुनाव प्रणाली का नाम वैकल्पिक या वरीयता प्रणाली होना चाहिए।

(iv) इस प्रणाली का यह दोष भी है कि यदि उम्मीदवार दो से अधिक हों और मतदाता केवल एक ही पसन्द का प्रयोग करे। इस प्रकार यदि किसी को पहली पसंद में बहुमत ना मिले तो चुनाव किस प्रकार होगा? उचित तो यह होता कि राष्ट्रपति पद के लिए तीन या इससे अधिक उम्मीदवार हों और संविधान निर्माता कम–से–कम तीन पसन्दों को देना अनिवार्य कर देते।

राष्ट्रपति द्वारा शपथ ग्रहण करना

अपना पद ग्रहण करने से पहले भारत के राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायाधीश के समक्ष शपथ लेनी पड़ती है, जिसका उल्लेख संविधान की धारा 60 में इस प्रकार किया गया हैः–

''मैं ईश्वर की शपथ लेता हूँ। सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक भारत के राष्ट्रपति पद का कार्य पालन करूँगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण तथा प्रतिरक्षण करूँगा और मैं भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।''

1.2.5 राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं कार्य

विधिशास्त्रियों के अनुसार भारतीय राष्ट्रपति सर्वशक्तिमान है जबकि राजनीति शास्त्रियों का कहना है कि केवल वह संवैधानिक अध्यक्ष हैं जो शक्ति की बजाय प्रभाव का प्रयोग करता है। संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार, ''संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी, जिसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा करेगा।'' संविधान के प्रावधानों के अनुसार भारत के राष्ट्रपति को दो प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हैंः–

(1) साधारण परिस्थितियों में प्रयुक्त शान्तिकालीन शक्तियाँ, एवं

(2) असाधारण परिस्थितियों में प्रयुक्त आपातकालीन शक्तियाँ।

साधारण परिस्थितियों की शक्तियों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता हैः–

विधायी शक्तियाँः भारत का राष्ट्रपति किसी भी सदन का सदस्य होते हुए भी इसका अभिन्न अंग है। राष्ट्रपति की विधायी शक्तियाँ निम्नलिखित हैंः–

(i) संसद का अधिवेशन बुलाना तथा सत्रावसान करनाः संविधान के अनुच्छेद 58(1), (2) के अन्तर्गत राष्ट्रपति संसद का अधिवेशन बुलाता है तथा समाप्त करता है। राष्ट्रपति संसद के अधिवेशनों का सत्रावसान कर सकता है किन्तु दो सत्रों के मध्य छः माह से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए।

(ii) संसद में अधिवेशनों का उद्घाटन और संशोधनः लोकसभा चुनावों के बाद गठित सरकार तथा प्रतिवर्ष बजट सत्र के दौरान राष्ट्रपति संसद में अभिभाषण देता है, जो सम्बन्धित सरकार की नीतियों का दर्पण होता है।

(iii) संयुक्त अधिवेशन बुलानाः यदि सदन के दोनों सदन किसी विषय पर असहमति प्रकट करें तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है।

(iv) राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन को संदेश भेज सकता है।

(v) राष्ट्रपति, लोकसभा में दो एंग्लोइन्डियन व्यक्तियों को मनोनीत कर सकता है यदि उन्हें आम चुनाव के दौरान संसद में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला हो। इसी प्रकार राज्यसभा में भी राष्ट्रपति 12 ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य, कला, विज्ञान, सामाजिक जीवन या शिक्षा आदि क्षेत्रों में विशेष ज्ञान का अनुभव रखते हों।

(vi) आपातकाल में राष्ट्रपति लोकसभा की अवधि एक वर्ष बढ़ा सकता है।

(vii) अध्यादेश जारी करने की शक्तिः अनुच्छेद 123 के अनुसार जब संसद के दोनों सदनों की बैठक न हो रही हो तथा किसी विषय पर तत्काल निर्णय लेना हो तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी की सकता है जो संसद की अगली बैठक के छः सप्ताह के दौरान अनुमोदित अथवा इसके पश्चात् निरस्त हो जाएगा। ये अध्यादेश मूल अधिकारों के हनन से सम्बन्धित नहीं हो सकते हैं। राष्ट्रपति के व्यक्तिक समाधान पर आधारित इन अध्यादेशों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। अगर संसद इसे स्वीकृति दे देती है तो यह अध्यादेश कानून बन जाता है। जैसे अटल बिहारी सरकार में राष्ट्रपति द्वारा आतंकवाद के खिलाफ आतंकवादी निरोधक अध्यादेश (POTO) जारी किया थाा जो बाद में कानून में बदल गया (POTA)। आलोचकों के अनुसार सत्तारूढ़ दल राष्ट्रपति की इस शक्ति का दुरूपयोग करते हैं; जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बारे में जो अध्यादेश जारी किया गया था वह संसद के अधिवेशन के शुरू होने से 2–3 दिन पूर्व किया गया था, जो न्याय संगत नहीं था। ए०बी० लाल के अनुसार, ''किसी भी देश में जहाँ लिखित संविधान तथा संसदीय प्रणाली की सरकार हो, राज्याध्यक्ष को ऐसी वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है।''

(viii) लोकसभा को भंग करने की शक्तिः भारत का राष्ट्रपति जब चाहे संसद के निचले सदन को भंग कर सकता है, लेकिन वास्तव में वह इस शक्ति का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह से ही करता है। उदाहरण के लिए सन् 1970 में राष्ट्रपति श्री वी०वी० गिरि ने श्रीमती इन्दिरा गांधी की सलाह पर लोकसभा को भंग किया था। 18 जनवरी, 1970 को राष्ट्रपति श्री फखरूद्दीन अली अहमद ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सलाह पर 22 अगस्त 1979 को राष्ट्रपति श्री संजीवा रेड्डी ने चौ० चरण सिंह की सलाह पर लोकसभा को भंग किया था। सन् 1966 के लोकसभा चुनाव में किसी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने के कारण सबसे पहले राष्ट्रपति ने भाजपा के शीर्ष नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया, परन्तु लोकसभा में बहुमत सिद्ध न करने पर और त्याग–पत्र देने पर श्री एच०डी० देवेगौड़ा को प्रधानमंत्री नियुक्त किया परन्तु कुछ समय पश्चात् संयुक्त मोर्चा में फूट के कारण श्री इन्द्रकुमार गुजराल को नेता चुना गया। संयुक्त मोर्चो से कांग्रेस द्वारा समर्थन वापिस ले लिए जाने के कारण सरकार गिर गई और राष्ट्रपति ने लोकसभा भंग कर दी।

(ix) संसद द्वारा पास किए गए बिलों पर स्वीकृतिः संसद में बिलों के पास होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति लेना आवश्यक है। यदि वह किसी बिल को स्वीकृति न दे, तो वह उस (धन–विधेयक के अतिरिक्त) बिल को पुनः विचार के लिए संसद के पास वापिस भेज सकता है। यदि वह विधेयक संसद के दोनों संदनों में पास होकर पुनः राष्ट्रपति के पास चला जाए तो राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। जैसे राष्ट्रपति आर०के० नारायणन ने अक्तूबर 1997 तथा सितम्बर 1998 में दो बार उत्तर प्रदेश तथा बिहार के खिलाफ राष्ट्रपति शासन लागू करने के विधेयकों को पुनर्विचार के लिए मन्त्रिमण्डल के पास भेजा था। इसी प्रकार अगस्त 2002 में राष्ट्रपति ए०पी०जे० अब्दुल कलाम द्वारा जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) बिल, 2002 को पुनर्विचार के लिए भेजा, परन्तु मन्त्रिमण्डल ने बिना किसी फेरबदल के उसी बिल को वापिस राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया और राष्ट्रपति को उस पर स्वीकृति देनी पड़ी।

(x) धन विधयेक, नये राज्यों के निर्माण (जैसे छत्तीसगढ़, उत्तरांचल तथा झारखण्ड) तथा वर्तमान राज्यों की सीमा में परिवर्तन, राज्यों के वित्तीय संसाधनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इत्यादि को प्रभावित करने वाले विषयों से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बाद ही सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(xi) राज्य विधानमण्डलों द्वारा राष्ट्रपति को भेजे गए विधेयकों को राष्ट्रपति पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है तथा दोबारा आने पर तार्किक आधार पर अपनी स्वीकृति पूर्णतः रोक (वीटो) भी सकता है जो संसद के विधेयकों के सम्बन्ध में अंशतः ही लागू होती है।

कार्यपालिका शक्तियाँ: भारतीय संघ की समस्त कार्य–पालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और वह इसका प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करता है। सारे देश का शासन राष्ट्रपति के नाम पर ही चलाया जाता है। इसकी कार्यपालिका शक्तियाँ निम्नलिखित हैं–

(i) प्रधानमंत्री की नियुक्ति तथा प्रधानमंत्री के परामर्श पर मन्त्रिपरिषद् में अन्य मन्त्रियों की नियुक्तियाँ करना;

(ii) प्रधानमंत्री तथा मन्त्रिपरिषद् को पद से हटाना;

(iii) राष्ट्रीय नीतियों तथा कार्यक्रमों में सहमति प्रकट करना तथा प्रधानमंत्री से सूचना माँगना;

(iv) देश के संचालन तथा मार्गदर्शन में सहयोग करना;

(v) सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करना;

(vi) भारत के महान्याविद (अटार्नी जनरल) की नियुक्ति, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति, राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति, केन्द्र शासित प्रदेशों में आयुक्तों की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति, निर्वाचन आयोग मुख्य चुनाव आयुक्त तथा चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति, राजदूतों तथा अन्य मिशनों में नियुक्ति, अन्तर्राज्यीय परिषद्, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्, वित्त आयोग, भाषा आयोग, केन्द्रीय सतर्कता आयोग इत्यादि में नियुक्तियाँ करना राष्ट्रपति के क्षेत्राधिकार में है।

(vii) राष्ट्रपति अनेक पुरस्कारों, अलंकारों तथा सम्मान पत्रों इत्यादि का वितरण करता है।

वस्तुतः राष्ट्रपति अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री तथा मन्त्रिपरिषद् के परामर्श पर करता है अर्थात् वास्तविकरूप से ये शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित न होकर मन्त्रिपरिषद में निहित है।

सैनिक शक्तियाँ: तीनों भारतीय सेनाओं की सर्वोच्च कमान राष्ट्रपति के हाथ में है, परन्तु वह इस शक्ति को विधि के अनुसार ही प्रयोग कर सकता है। वस्तुतः युद्ध और शान्ति के समय कानून बनाने का अधिकार पूर्णरूप से संसद को प्राप्त है और बिना संसद की स्वीकृति के, वह न तो युद्ध की घोषणा कर सकता है और न ही सेनाओं को युद्ध लड़ने के लिए भेज सकता है।

न्यायिक शक्तियाँ: संविधान के अनुच्छेद 72 के अनुसार राष्ट्रपति को क्षमादान का अधिकार दिया गया है। वह दण्ड को पूर्णरूप से क्षमा कर सकता है, स्थगित कर सकता है अथवा दण्ड में परिवर्तन कर सकता है। इस अधिकार का प्रयोग केवल तीन प्रकार के दण्ड़ों पर कर सकते हैं – (i) यदि दण्ड किसी सैनिक न्यायालय द्वारा दिया गया हो; (ii) यदि दण्ड ऐसे मामलों में दिया गया हो जो केन्द्रीय कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हों; और (iii) यदि अपराधी को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। व्यवहार में राष्ट्रपति इन अधिकारों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही करेगा।

वित्तीय शक्तियाँ: राष्ट्रपति के नाम से ही प्रतिवर्ष बजट वित्तमन्त्री द्वारा संसद में पेश किया जाता है। उनकी अनुमति बिना कोई धन विधेयक लोकसभा में पेश नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपति प्रतिवर्ष लेखा परीक्षक रिपोर्ट, वित्त आयोग की सिफारिशें आदि संसद के सम्मुख प्रस्तुत करवाता है। राष्ट्रीय संसद से पूरक, अतिरिक्त तथा अपवादभूत अनुदानों की माँग भी कर सकता है। भारत की आकस्मिक विधि पर उसका पूर्ण नियन्त्रण रहता है। वह सरकार की इस निधि में से संसद की अनुमति के बिना ही अचानक आ पड़ने वाले खर्च को दे सकता है।

आपातकालीन शक्तियाँ: जर्मनी के बाईमर संविधान की भाँति भारत के संविधान द्वारा भी राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गई है। हमारे संविधान के 18वें भाग में इन शक्तियों का उल्लेख किया गया है। आपातकालीन समस्या के समाधान के लिए शक्तियों का कुछ केन्द्रीकरण आवश्यक हो जाता है। जिससे यह भी सम्भव है कि

कार्य–पालिका निरंकुशरूप धारण करने का प्रयत्न कर सकती है। संविधान में इस संदर्भ में प्रायः कुछ 'विशेष रक्षक प्रावधान' समावेशित किए हैं जो कार्य पालिका की निरंकुश बनने की प्रवृत्ति पर अवरोध लगाते हैं। 49वें संविधान संशोधन के तहत आपातकालीन प्रावधानों को सुरक्षा कवच पहनाया गया है और अब आपातकालीन शक्तियों के प्रावधान इस प्रकार हैं –

(1) युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकटः मूल संविधान के अनुच्छेद 352 में व्यवस्था है कि यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाये कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति के कारण भारत या उसके किसी भाग की शान्ति व्यवस्था के नष्ट होने की आशंका है या यथार्थरूप में इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर राष्ट्रपति संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता था। संसद की स्वीकृति के बिना भी यह दो माह तक लागू रहती थी और संसद से स्वीकृत हो जाने पर शासन जब तक उसे लागू रखता चाहता तो लागू रख सकता था। अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत चार बार आपातकाल की घोषणा की गई है – 1962, 1965, 1971 (बाह्य आक्रमण) तथा 1975 (आन्तरिक अव्यवस्था के कारण)। संकटकाल के दौरान शक्तियों का दुरूपयोग किया गया, विशेषकर 1975 में। अतः इन आपातकालीन शक्तियों का दुरूपयोग न किया जाए इसलिए 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों पर काफी प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं –

(i) अनुच्छेद 352 में ''आन्तरिक अशान्ति'' के स्थान पर ''सशस्त्र विद्रोह'' शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जिससे राष्ट्रपति आन्तरिक अशान्ति की स्थिति में आपात–उद्घोषणा कर सकेगा, जब देश के किसी भाग में ''सशस्त्र विद्रोह'' प्रारम्भ हो गया हो।

(ii) राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की घोषणा तभी की जा सकेगी, जब केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल लिखितरूप से राष्ट्रपति को ऐसा परामर्श दे।

(iii) राष्ट्रपति द्वारा घोषणा किए जाने के एक माह के अन्दर संसद के विशेष बहुमत (पृथक–पृथक संसद के दोनों सदनों के कुल बहुमत एवं उपस्थिति और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत) से इसकी स्वीकृति आवश्यक है तथा लागू रखने के लिए प्रति छः माह बाद संसद की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।

(iv) संसद के साधारण बहुमत द्वारा संकटकाल की घोषणा समाप्त की जा सकती है।

यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि 44वें संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में किए गए 38वें संवैधानिक संशोधन को भी रद्द कर दिया गया है, जिसमें यह प्रावधान था कि राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत की गई संकटकालीन घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस प्रकार अब राष्ट्रपति द्वारा लागू की गई आपातकालीन घोषणा को न्याय योग्य बना दिया गया है। अब इस प्रकार की घोषणा को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

आपात उद्घोषणा के प्रभावः संक्षेप में आपात उद्घोषणा के संवैधानिक प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(i) संसद को सम्पूर्ण देश अथवा उसके किसी क्षेत्र के लिए सभी विषयों अथवा राज्य सूची में दिए गए विषयों पर भी कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जायेगी। राज्य–सूची के सम्बन्ध में संघ द्वारा निर्मित ये कानून उद्घोषणा की समाप्ति के छह माह बाद प्रभावी नहीं रहेंगे।

(ii) संघ की कार्यपालिका को राज्यों की कार्यपालिकाओं को यह निर्देश देने का अधिकार हो जाता है कि किस प्रकार शक्ति का प्रयोग करें।

(iii) राष्ट्रपति यह आदेश दे सकता है कि संघ और राज्यों के बीच आय–वितरण सम्बन्धी सभी या कोई भी उपबन्ध चालू वित्तीय वर्ष में उनके निर्देशानुसार संशोधित होते रहेंगे, परन्तु ऐसा आदेश यथाशीघ्र संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जाएगा।

(iv) आपातकालीन घोषणा के लागू रहने के समय में 19वें अनुच्छेद द्वारा नागरिकों को प्राप्त स्वतन्त्रताएँ स्थगित हो जाएगी और राज्य के द्वारा इन स्वतन्त्रताओं को स्थगित करने वाले कानूनों का निर्माण किया जा सकेगा। 44वें संविधान संशोधन में प्रावधान किया गया है कि यदि आपात–स्थिति सशस्त्र विद्रोह के कारण लागू की गयी है, तो अनुच्छेद 19 की व्यवस्थाओं को स्थगित नहीं किया जा सकता। आपात–स्थिति की समाप्ति के बाद ऐसे कानून तत्काल समाप्त हो जाएँगे।

(v) मूल संविधान में व्यवस्था थी कि राष्ट्रपति के आदेश द्वारा अनुच्छेद 32 में वर्णित संवैधानिक उपचारों (न्यायालय की शरण) के अधिकारों को भी स्थगित कर सकता है। 44वें संशोधन के आधार पर यह व्यवस्था की गई कि आपातकाल में भी जीवन और शारीरिक स्वाधीनता के अधिकार को समाप्त या सीमित नहीं किया जा सकेगा। लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारों के लिए नागरिक न्यायालय की शरण ले सकेंगे।

(2) राज्यों में संवैधानिक तन्त्र असफल होने से उत्पन्न संकटः

संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार अगर राष्ट्रपति को राज्यपाल के प्रतिवेदन पर या किसी अन्य प्रकार से यह विश्वास हो जाए कि ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं कि किसी राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है व संकटकाल की घोषणाकर सकता है।

ऐसा आपातकाल घोषित करने की विधि नहीं है जो प्रथम प्रकार के संकट के लिए है। मूल संविधान में संकट की समयावधि छह माह थी। 42वें संविधान द्वारा इस अवधि को एक वर्ष कर दिया गया था, परन्तु 44वें संशोधन द्वारा इस अवधि को पुनः छह माह कर दिया गया है। 44वें संशोधन के पूर्व राज्य में राष्ट्रपति शासन की अधिकतम अवधि तीन वर्ष थी, लेकिन अब इस व्यवस्था में परिवर्तन किया गया है कि राज्य में राष्ट्रपति शासन के एक वर्ष की अवधि के बाद इसे और अधिक समय के लिए जारी रखने का प्रस्ताव संसद तभी पारित कर सकेगी, जबकि इस प्रकार का प्रस्ताव पारित किए जाने के समय अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकाल लागू हो और चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य में चुनाव कराना सम्भव नहीं है।

घोषणा के संवैधानिक प्रभावः इस प्रकार की घोषणा के परिणाम निम्नलिखित होंगे–

(i) राष्ट्रपति किसी भी राज्य अधिकारी का कोई भी कार्यपालिका सम्बन्धित कार्य स्वयं ग्रहण कर सकता है।

(ii) राष्ट्रपति राज्य के विधान मण्डल की शक्तियाँ संसद को हस्तान्तरित कर सकेगा और संसद को यह अधिकार होगा कि वह उन विधायी शक्तियों को राष्ट्रपति को सौंप दे अथवा राष्ट्रपति को यह अधिकार दे कि वह उन्हें किसी अन्य अधिकारी को सौंप दे।

(iii) यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा हो, तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की स्वीकृति दे सकता है।

(iv) राष्ट्रपति उद्घोषणा की पूर्ति के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति को छोड़कर अन्य समस्त शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकता है।

संविधान के इन उपबन्धों का अब तक लगभग 115 से भी अधिक बार प्रयोग किया जा चुका है। पहली बार 1951 में पंजाब में भार्गव मंत्रिमण्डल के पतन के कारण ऐसी उद्घोषणा की गई थी। उसके बाद 1952 में पेप्सू राज्य में, 1954 में आंधप्रदेश में, 1956 में ट्रावनकोर कोचीन, 1959 में केरल, 1961 में उड़ीसा, 1966 में पंजाब, 1967 में राजस्थान और इसके बाद पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक और गुजरात में संकटकालीन घोषणा लागू की गई, 1973 में उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश, 1974 में पांडिचेरी, 1975 में नागालैण्ड, 1976 में तमिलनाडु और गुजरात, 1977 में जम्मू कश्मीर, मिजोरम तथा 9 राज्यों की विधानसभा भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। इस स्थिति की पुनरावृत्ति तब हुई जब 1980 में केन्द्र सरकार द्वारा 9 राज्यों की विधानसभाएँ भंग कर इन राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया।

पंजाब राज्य में कानून–व्यवस्था के सम्बन्ध में असन्तोषजनक स्थिति के कारण अक्तूबर 1983 में वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू किया गया, मार्च 1981 तथा पुनः अगस्त 1984 में संविधान में संशोधन कर पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाई गई और दिसम्बर 1985 तक पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू रहा। पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बार–बार बढ़ाई गई और 11 मई, 1987 से चला आ रहा राष्ट्रपति शासन 25 फरवरी 1922 को हटाया गया। 1989 में नागालैण्ड और कर्नाटक, 1990 में असम में, 1991 में तमिलनाडु, 1992 में नागालैण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा राजस्थान में आपत्तिपूर्ण राष्ट्रपति शासन लगाया गया क्योंकि वहाँ पर भाजपा सरकार कायम थी और वहाँ की विधानसभा को बहुमत प्राप्त था और संवैधानिक तन्त्र असफल नहीं हुआ था। अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में 18 अक्तूबर 1995, 1996 को राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। इसके बाद 1996 में ही गुजरात, 1997 में फिर उत्तर प्रदेश विधानसभा में विश्वास मत प्राप्त करने के बावजूद राज्यपाल रोमैश भण्डारी की रिपोर्ट पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने अनुच्छेद 356 के तहत् विधानसभा भंग करके राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की, परन्तु राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने इसे पुनर्विचार के लिए मन्त्रिमण्डल के पास भेज दिया। इसी प्रकार 1998 में राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने बिहार में राष्ट्रपति शासन लगाने से इन्कार कर दिया। फरवरी 1999 में देश के दो राज्य गोवा व बिहार राष्ट्रपति शासन के अधीन आ गए। सरकारिया आयोग ने इस मुद्दे पर विचार करते हुए पाया कि मन्त्रिमण्डल को विधानसभा में बहुमत प्राप्त होने के बावजूद 13 मामलों में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया, ऐसे 15 मामलों में, जिनमें मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया था और 26 मामलों में ही राष्ट्रपति शासन लागू करने को अपरिहार्य माना है।

श्री महेश्वरी के शब्दों में, ''अनुच्छेद 356 देश की राजनीतिक और प्रशासनिक प्रक्रिया का एक अन्तरंग भाग, सम्भवतया इसका मानस बन गया। ''अनुच्छेद के इतने अधिक प्रयोग को उचित नहीं कहा जा सकता।

(3) आर्थिक आपातकालः

धारा 360 के अन्तर्गत यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत या उसके किसी राज्य के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व संकट में हैं, तो वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। यदि वह घोषणा संसद 2 माह के अन्दर नहीं करती तो यह अपने आप समाप्त हो जाती है। ऐसा उपातकाल भारत में अभी तक नहीं आया है।

ऐसी घोषणा के प्रभावः

(i) वित्तीय संकट की अवस्था मे राष्ट्रपति राज्यों को ऐसे निर्देश दे सकता है जो उसकी दृष्टि में वित्तीय साख बनाये रखने के लिए आवश्यक हों।

(ii) ऐसे समय में सरकारी कर्मचारियों के वेतन कम कर सकता है।

(iii) वह आदेश दे सकता है कि प्रत्येक धन बिल उसकी स्वीकृति के लिए भेजा जाए।

(iv) यह संघ और राज्यों के बीच राजस्व के बटवारे के विषय में आवश्यक बदलाव कर सकता है।

(v) वित्तीय साख को बचाने के लिए कोई भी कदम उठा सकता है। हमारे देश में इसकी संकट घोषणा नही की गई है

संकटकालीन शक्तियों की आलोचनाः

1. मौलिक अधिकार अर्थहीन हो जाएंगे इन शक्तियों के आधार पर वह 6 मौलिक स्वतन्त्रताओं को निलंबित करसकता है।
2. संकट काल में राष्ट्रपति राज्यों के आर्थिक मामलों में दखल दे सकता है। जिससे राज्यों की वित्तीय

   स्वतन्त्रताओं को बड़ा आघात पहुँचता है।
3. इससे राज्यों मे विरोधी दलों की सरकारों का दमन किया जा सकता है। क्योंकि सत्ताधारी दल अन्य दलों पर भारी पड़ने का प्रयास कर सकता है।
4. संकट काल में न्यायपालिका के अधिकारों को सीमित किया जाना ठीक नहीं संविधान की धारा 352 तथा 356के अधीन राष्ट्रपति द्वारा की गई आपतकालीन घोषणाओं के औचित्यों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती लेकिन अब 44 वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति की घोषणा को न्यायालय में चुनोती दी जा सकती है।
5. संकटकालीन स्थिति का फैसला करने का अधिकार राष्ट्रपति का है। लेकिन वह न तो जनता का प्रतिनिधित्व करता है और न ही अपनी शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी के प्रति उतरदायी है। वह एक अनुत्तरदायी मुखिया की भूमिका वहन करता है।
6. संघीय ढांचा संकटकाल में एकात्मक सरकार में बदल जाता है। जिससे राज्यों की सरकार समाप्त हो जाती है।
7. वित्तीय संकटकाल में राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन कम कर उनकी स्वतन्त्रता को हानि पहुँचा सकता है।

आपातकालीन शक्तियों का औचित्यः

1. हमारा इतिहास इस बात का गवाह है कि केन्द्र सरकार कमजोर होने पर हमें हानि उठानी पड़ी है। जिसके कारण केन्द्र सरकार का शक्तिशाली होना आवश्यक हो जाता है।
2. देश की रक्षा और सुरक्षा का उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार का ही होता है। इसलिए संघीयरूप इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितनी राष्ट्रीय सुरक्षा।
3. महाभियोग ऐसा शस्त्र है जिससे राष्ट्रपति को तानाशाह बनने से रोका जा सकता है।
4. राष्ट्रपति संवैधानिक मुखिया है। उसे सारे कार्य प्रधानमंत्री और मंत्रिमण्डल की सलाह पर ही करने होते है। जिससे वह स्वविवेक का प्रयोग करके देश का शासन संभाल नही सकता।
5. संकट काल की घोषणा तभी कि जा सकती है जब ससंद के दोनों सदन इसकी स्वीकृति दे देते है। यदि वह स्वकृति प्रदान न करे तो संकटकाल की घोषणा उसी समय समाप्त हो जाती है जैसे बिहार में श्री अटल बिहारी सरकार के काल में लगाई गई उापातकाल घोषणा राज्यसभा में स्वीकृति न मिलने के कारण रद्द हो गई थी। 44 वें संशोधन के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि लोकसभा एक प्रस्ताव पास करके किसी भी समय आपतकालीन घोषणा को समाप्त कर सकती है।

6. मौलिक अधिकारों का स्थगन अवैध नहीं है। क्योंकि मौलिक अधिकार तभी सुरक्षित होते हैं जब देश सुरक्षित होता है। इसलिए उनसे अधिक आवश्यक राष्ट्रीय सुरक्षा है।

7. वित्तीय संकटकाल का प्रवधान करना आवश्यक तथा उचित है क्योंकि वित्त के बिना शासन नहीं चलाया जा सकता है। यदि वित्त व्यवस्था ही सही नहीं हो तो शासन मृतक होता है। इसलिए संविधान निर्माताओं ने दूरदर्शिता का परिचय दिया।

1.2.6 राष्ट्रपति की वास्वविक स्थिति

राष्ट्रपति की विभिन्न शक्तियों से यह प्रतीक होता है कि वह देश का वास्तविक तथा संवैधानिक मुखिया है परन्तु उसकी वास्वतिक स्थिति को देखा जाए तो ऐसा नहीं है। इसलिए भारतीय राष्ट्रपति की वास्वतिक स्थिति का निर्धारण एक अत्यधिक विवादग्रस्त प्रश्न है। संविधान के अनुच्छेद 53 के द्वारा राष्ट्रपति को जो शक्तियां दी गई हैं व्यवहार में वह स्वयं के विवेक के आधार पर इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 74(1) में निहित शक्तियों के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं होगा और वह चाहे तो वास्वतिक शासक बन सकता है। डी० एन० बनर्जी के अनुसार, ''क्या राष्ट्रपति को अनुच्छेद 74(1) के उपबन्ध मानने के लिए बाध्य किया जा सकता है? क्या राष्ट्रपति हर स्थिति में अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा मानने को बाध्य है? मैं तो कहता हूँ कि ऐसी नहीं है। ''प्रारूप समिति के वैधानिक सलाहाकर श्री बी० एन० राव लिखते हैं कि ''संविधान राष्ट्रपति का कोई ऐसा वैधानिक उत्तरदायित्व निश्चित नही करता है कि वह मन्त्रियों की मन्त्रणा के आधार पर कार्य करेगा। क्या वह और किसी सीमा तक ऐसा करने के लिए बाध्य होगा, परम्परा का विषय है।'' संविधान सभा के अध्ययक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद का भी यही मत था कि ''अनुच्छेद 74(1) यह नहीं कहता कि राष्ट्रपति को मन्त्रियों की मन्त्रणा माननी ही होगी।''

18 सितम्बर, 1951 को प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने एक नोट भेजा कि किसी भी बिल की स्वीकृति के समय, संसद को संदेश भजेते समय तथा बिलों को पुनर्विचार के लिए भेजते समय वह अपने विवेक से कार्य करेगा न कि मंत्रिपरिषद् की सलाह पर। इसके बाद प्रधानमंत्री जवाहर लजाल नेहरू ने राष्ट्रपति के विचारों को मद्रास में ए० के० अय्यर तथा अटार्नी जनरल एम० सी० सटालवद के पास उनकी सलाह के लिए भेजा, तो दोनों ने राष्ट्रपति के विचारों के खिलाफ राय दी और कहा कि इससे पूरे संविधान का ढाँचा हिल जाएगा और राष्ट्रपति एक तानाशाह बन सकता है।

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने 28 नवम्बर,1960 को 'भारतीय विधि संस्थान में भाषण के दौरान इस आवश्यकता पर बल दिया कि ''वैज्ञानिक पद्धित से इस सन्दर्भ में अध्ययन और परीक्षण होना चाहिए, जिससे राष्ट्रपति के कार्यों एवं शक्तियों की सीमाओं का आभास हो सके।''

डा० जे० आर० सिवाच ने अपने शोध ग्रंथों में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''भारत में राष्ट्रपति की स्थिति वैसी नहीं है जैसी ब्रिटेन में सांसद की है। कुछ मामलों में राष्ट्रपति के द्वारा मंत्रिपरिषद् के परामर्श की अवहेलना करते हुए भी अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग किया जाना चाहिए, यदि वह अपनी शपथ के प्रति निष्ठा रखता है।''

सन् 1967 में राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार सुब्बाराव तथा समर्थकों के द्वारा 'स्वतन्त्र राष्ट्रपति धारणा के बारे में कहा था कि ''राष्ट्रपति केवल एक संवैधानिक प्रधान नही है और उस पर संविधान की व्यवस्थाओं को क्रियान्वित करने का विशेष भार है।''

अतः इस पक्ष के समर्थकों के अनुसार यदि राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रधान ही बनाना था, तो उसको कुछ ऐसी शक्तियों क्यों दी गई जो अध्यक्षात्मक प्रणाली में पाई जाती है। उसके अनुसार भारतीय राष्ट्रपति सभी परिस्थितियों में मंत्रिपरिषद् की मन्त्रणायों मानने के लिए बाध्य नहीं होगा।

भारतीय राष्ट्रपतियों की भूमिका के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययनः

1950 से 2003 तक भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन करना एक महत्वपूर्ण पहलू है और यह अध्ययन राष्ट्रपति के व्यक्तित्व, तत्कालीन परिस्थिति तथा प्रशासन में उनकी सिंिति पर निर्भर करता है।

सर्वप्रथम डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा प० जवाहर लाल नेहरू के बीच हिन्दू कोड बिल के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हुए। तिब्बत को चीन के अंग केरूप में स्वीकार करने के शासन के दृष्टिकोण से भी डा० प्रसाद सहमत नही थे। केरल के साम्यवादी शासन के विरूद्ध कांग्रेसी आन्दोलन (1959) को राष्ट्रपति नितान्त अनुचित मानते थे। डा० प्रसाद द्वारा सोमनाथ मन्दिर के उत्सव की अध्यक्षता, दिसम्बर 1950 में पटेल की शवयात्रा में भाग लेने और 1952 में बनारस यात्रा के अवसर पर श्रद्धावश पझिडतों के पेर धोने के सम्बन्ध में नेहरू के विरोध को अस्वीकार करते हुए अपने विवेक के अनुसार कार्य कियां सौभाग्यवश इन मतभेदों को सार्वजनिकरूप से व्यक्त किया गया।

दूसरे राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन प्रशासन में स्वतन्त्ररूप से भूमिका निभाने की आकांक्षा रखते थे। जैसे जनरल थापर के त्यागपत्र देने परी जनरल चौधरी की नियुक्ति करन राधाकृष्णन के परामर्श का ही परिणाम था जबतम नेहरू जनरल कौल को इस पद पर नियुक्त करना चाहते थे। पंजाब के मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों के विरूद्ध जांच आयोग बैठाने का कार्य भी नहेरू ने अपनी इच्छा के विरूद्ध और डा० राधाकृष्णन के आग्रह पर ही किया था। नेहरू की मृत्यु के पश्चात परिष्ठतम केबिनेट सदस्य को कार्यवाहक प्रधानमंत्री बनाने का निर्णय भी डा० राधाकृष्णन ने ही लिया था।

डा० जाकिर हुसैन के राष्ट्रपति काल में बदली हुई दलीय स्थिति के कारण उनकी केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों में भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती थी, परन्तु राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की पसंद के उमीदवार होने के कारण्रा दोनों में इस प्रकार का कोई मतभेद नही हुआ इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति जाकिर हुसैन पूर्णरूप से प्रधानमंत्री के कार्यों से सहमत रखते थे।

श्री वी० वी० गिरि तथा प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के सम्बन्ध सन् 1972 के अंत तक मधुर रहे, परन्तु 1973 के आरम्भ में राष्ट्रपति शासन को परामर्श देने, चेतावनी देने तथा भर्त्सना करने लगा। सन् 1974 में रेलवे हड़ताल के सम्बन्ध में और गुजरात विधान सभा भंग किए जाने के सम्बन्ध में उनके विचार प्रधानमंत्री से मेल नहीं खाते थे।

1974 में राष्ट्रपति पद के लिए यह धारणा अपनाई गई कि ''राष्ट्रपति प्रधानमंत्री का आदमी हो' और फखरूद्दीन अली अहमद को राष्ट्रपति चुना गया। राष्ट्रपति अहमद के द्वारा 24 जुन, 1975 की रात्रि को आपातकालीन उद्घोषणा पर यह जानते हुए हस्ताक्षर किये कि मंत्रिमण्डल ने इस विषय पर विचार नहीं किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय राष्ट्रपति एक रबड़ की मोहर केरूप में कार्यरत है।

सन् 1977 में भारत के संवैधानिक इतिहास मे पहली बार किसी महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्न पर प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच मतभेद 9 राज्यों की विधान सभाएं भंग किए जाने पर देखा गया। बी० डी० जत्ती ने स्थिति का अध्ययन करने के नाम पर 24 धण्टे से भी अधिक समय तक मंत्रीमण्डल के निर्णय पर अपनी स्वीकृति नहीं दी, परन्तु बाद में मंत्रीमण्डल के परामर्श को स्वीकार कर लिया गया। नीलम संजीव रेड्डी का राष्ट्रपति पद पर (जुलाई, 1977) सर्वसम्मत निर्वाचन हुआ और इससे राष्ट्रपति पद तथा पदधारी की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। 15 जुलाई, 1979 को असामान्य परिस्थितियों में मोरारजी देसाई के पद त्याग तथा यशवन्त राव चौहान द्वारा सरकार बनाने में

असमर्थता व्यक्त किए जाने के बाद राष्ट्रपति द्वारा मोरारजी देसाई और चरणसिंह से प्रधानमंत्री पद के लिए अपने दावे प्रस्तुत किए जाने पर चरणसिंह को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया। इसके साथ एक माह के अन्दर उनके द्वारा लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त किए जाने का आदेश दिया। चरणसिंह सरकार वस्तुतः राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सरकार थी क्योंकि उसने लोकसभा में कभी विश्वास प्राप्त नहीं किया। चरणसिंह सरकार द्वारा प्रस्वावित नजरबन्दी अध्यादेश पर हस्ताक्षर करने से पूर्व राष्ट्रपति रेड्डी द्वारा सरकार से कुछ स्पष्टीकरण माँगे गए।

सन् 1980 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के पुनः सत्ता में आने पर राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री के मध्य पुनः मतभेद उभरे। सोवियतरूस की यात्रा के लिए श्री संजीव रेड्डी तैयार नहीं थे, परन्तु इसके लिए उन्हे बाध्य किया गया। जब राष्ट्रपति श्री लंका की यात्रा पर जाना चाहते थे तो श्रीमती गाँधी इसके लिए सहमत नही हुई ओर इस प्रकार से ऐसी सिथति आ गई थी कि देश–विदेश की स्थिति से सम्बन्धित ज्ञान राष्ट्रपति को केवल समाचार पत्रों से ही हो पाता था न कि प्रधानमंत्री द्वारा।

सन् 1982 में ज्ञानी जैलसिंह के राष्ट्रपति केरूप में चुने जाने के बाद, भारतीय संविधान में यह पहला मौका था कि राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री के बीच बहुत गहरे मतभेद हो गए जो कि आम जनता के समक्ष भी खुलकर आ गऐ थे। लगभग दो वर्षों तक केबिनेट का कोई भी मंत्री राष्ट्रपति के बुलाने पर भी कामकाज के एिल राष्ट्रपति के पास नपहीं पहुँचा। इसलिए राष्ट्रपति ने विवादास्पद भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया, सरकार से न्यायाधीशों की नियफक्ति के लिए स्पष्ट नीति न अपनाने के बारे मे जवाब माँगा दूरदर्शन के एक तरफा प्रसारण पर ऐतराज उठाया, मुख्य चुनाव आयुक्त को बुलाकर हरियाणा में अन्य राज्यों के साथ चुनाव न कराए जाने का कारण पूछा, आन्ध्र प्रदेश की तत्कालीन राज्यपाल कुमुदबेन जोशी को दायरे से बाहर जानपे पर फटकारते हुए सरकार से पूछा कि राष्ट्र के नाम उनके संदेश को सेंसर क्यों किया गया? प्रधानमंत्री ने प्रोटोकाल की अनदेखी करते हुए राष्ट्रपति को अपनी यात्राओं के बारे में बताना बन्द कर दिया और राष्ट्रपति की जगह उपराष्ट्रपति को विदेश यात्राओं पर भेजना शुरू कर दिया। इन्दिरा कांग्रेस के एक सांसद और केन्द्रीय मंत्री के० के० विवारी द्वारा 1986 के बजट सत्र में राष्ट्रपति पर उग्रवादियों को प्रश्रय देने का आरोप तक लगा डाला था। राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री को लिखे एक पत्र में कहा कि असम, पंजाब और मिजोरम के बारे में समझौते करते समय उनको किसी भी स्तर की कोई जानकारी नहीं दी गई। संक्षेप में, राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह और प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के समबन्ध आपस में संविधान कीरूपरेखा से बाहर रहे। लेकिन इन सबके लिए प्रधानमंत्री ही जिम्मेदार थे।

25 जुलाई, 1987 को श्री आर० वेकटरमण को राष्ट्रपति चुने जाने के बाद उनके सामने कई मुद्दे थे, जैसे विवादास्पद डाक विघेयक, राष्ट्रपति का सूचना प्राप्त करने का अधिकार जो कि पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह के समय में मुख्य विवाद रहा और प्रधानमंत्री पर मुकद्दमा चलाने की याचिकाओं पर अनुमति देने से सम्बन्धित आदि। राष्ट्रपति आर० वेंकटरमण का कार्यकाल ठीक–ठाक चला, केवल अक्टूबर 1987 में केंद्र सरकार को थोड़ी परेशानी हुई जब राष्ट्रपति ने राज्यपालों को चिट्ठी लिखी कि वे राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना राज्य से बाहर न जाएँ।

25, जुलाई 1992 को डा० शकर दयाल शर्मा को राष्ट्रपति चुना गया। राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिंह राव के बीच केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त पद पर श्री एस० वी० गिरि की नियुक्ति को लेकर मतभेद हुए थे। राष्ट्रपति द्वारा 14 अगस्त, 1995 के भाषण में आर्थिक सुधारों पर आलोचनात्मक टिप्पणी की गई थी। इन मतभेदों के बावजूद उनका कार्यकाल समरूपता से चला कोई असंवैधानिक विवाद नही उभरा।

25 जुलाई 1997 को राष्ट्रपति पद संभालने के तीन महीने के अन्दर श्री के० आर० नारायण ने वो स्थान प्राप्त किया जो इससे पूर्व किसी राष्ट्रपति ने नहीं किया था। 21 अक्टूबर, 1997 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन करने की सिफारिश को इन्कार कर राज्य की वैध सरकार को बचाया और संविधान के रक्षक केरूप में उदाहरण पेश किया। इससे पहले किसी राष्ट्रपति ने केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के गलत फैसलों को इस

तरह नहीं फटकारा था। फरवरी 1998 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी को लेकर राष्ट्रपति एवं गुजराल मंत्रिमण्डल के बीच विवाद उत्पन्न हो गया था। परन्तु गुजराल मंत्रिमण्डल ने न तो राज्यपाल को हटाने की सलाह दी और न ही इस मुद्दे का एजेण्डे में विचार के लिए शामिल किया गया।

सितम्बर, 1998 में राष्ट्रपति ने बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू करने की प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के मंत्रिमण्डल की सिफारिश को पुनविंचार के लिए लौटाकर भी अपनी सूझबूझ का परिचय दिया। 27 जनवरी, 2000 को भारतीय गणतन्त्र की 50 वीं वर्षगाँठ पर एक समारोह में राष्ट्रपति ने जनतांत्रिक गठबन्धन को संविधान के साथ छेड–छाड़ को लेकर सचेत किया। राष्ट्रपति के शब्दों में ''आज जबकि संविधान की समीक्षा किए जाने और यहाँ तक कि एक नया संविधान को हमने विफल किया है।'' सरकारी कर्मचारियों के राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की गतिविधियों में भाग लेने के मुद्दे को लेकर राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर स्पष्टीकरण देने को कहा। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जो कि विवादों से बचना चाहते हैं, राष्ट्रपति को बताया कि उनकी सरकार राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ को राजनैतिक संगठन नहीं मानती और यह बात न्यायालयों द्वारा प्रमाणित हो चुकी है।

25 जुलाई, 2002 को डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम को राष्ट्रपति की शपथ दिलाई गयी। राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने भी पूर्व राष्ट्रपति के० आर० नारायणन् की तरफ से अगस्त 2002 को जन प्रतिनिधित्त्व (संशोधन) बिल, 2022 को पुनविंचार के लिए अटल बिहारी मंत्रिमण्डल को भेजकर अपनी सूझबूझ का परिचय दिया। और उनका कार्यकाल अब स्थिरता से चल रहा है।

समस्त विवेचन के आधार पर राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में निम्न बातें कही जा सकती हैंः–

1. राष्ट्रपति औपचारिक प्रधान हैः भारत में संसदात्मक शासन व्यवस्था है ओर इस शासन में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त होती है– नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका। राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका है। राष्ट्रपति को राज्य का प्रतीक और औपचारिक अध्यक्ष कहा जा सकता है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार ''हमारे राष्ट्रपति की वही स्थिति है जो ब्रिटिश संविधान में सम्राट की है। वह राज्य का प्रधान है, किन्तु कार्यपालिका का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधत्त्व करता है, किन्तु राष्ट्र पर शासन नहीं करता है। प्रशासन में उसका वही स्थान है जो औपचारिक व्यवस्था द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जो राष्ट्र के प्रत्येक निर्णय को मोहर लगाकर अपने नाम से राष्ट्र के समक्ष घोषित करता है।''

2. राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश सम्राट के समान हैः संविधान के अनुसार हमारी शासन पद्धति ब्रिटिश की संसदीय व्यवस्था पर आधारित है। इसके अनुसार सम्राट नाममात्र का ही प्रधान है उसे वो अधिकार मिले हुए है वे मंत्रिमण्डल द्वारा प्रयोग किऐ जाते हैं। यही स्थिति भारत में राष्ट्रपति की है जो केवल संवैधानिक राज्याध्यक्ष है। संविधान सभा में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था, ''हमने ब्रिटेन के सम्राट की भाँति यहाँ राष्ट्रपति का पद बनाया है। उसकी स्थिति

   संवैधानिक राष्ट्रपति की है। यद्यपि संविधान में इस आशय का कोई उपबंध नहीं है कि राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों के परामर्श पर कार्य करना होता है, उसी प्रकार यही परम्परा यहाँ भी अपनायी गई है। इस तरह भारत का राष्ट्रपति सभी मामलों में संवैधानिक राष्ट्रपति बन जाएगा।''

3. राष्ट्रपति संविधान का गौरवपूर्ण अंशः राष्ट्रपति राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। देशभक्ति तथा प्रेरक तथा सामाजिक उत्सवों का आकर्षण है। उसका जीवन और गतिविधियाँ व्यापक वार्वजनिक प्रचार प्राप्त करती है। वह जनता के लिए गौरव और प्रतिष्ठा का मूर्तरूप है। वह राष्ट्रीय उत्सवों का उद्घाटन व राष्ट्रीय समारोहों की अध्यक्षता करता है । गणतंत्र दिवस पर परेड की सलामी लेकर राष्ट्रपति राष्ट्र की शोभा बढ़ाता है। श्री जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा में कहा था, ''हमने अपने राष्ट्रपति को वास्तविक शक्ति नहीं दी है। वरन् हमने पद को सत्ता और प्रतिष्ठा से विभूषित किया है।

4. राष्ट्रपति परामर्शदाता और मित्र केरूप मेंः राष्ट्रपति केवल नाममात्र का अध्यक्ष नहीं हैं। वह परोक्षरूप से कार्य करते हुए अपने मंत्रियों से कार्य करने का आग्रह करता है। उसे मंत्रियों को परामर्श देने, प्रोत्साहित करने तथा चेतावनी देने की तीन शक्तियों प्राप्त हैं। उसकी गरिमामय स्थिति तथा उसका निष्पक्ष स्वरूप इस तथ्य को निशिचत कर देता है कि उसके द्वारा दिया गया परामर्श अत्याधिक सम्माननीय होगा। यदि राष्ट्रपति बुद्धिमान, पराक्रमी तथा चतुर हो तो उसकी उपेक्षा करना प्रधानमंत्री के लिए असम्भव है।

5. वैदेशिक मामलों को प्रभावित करनाः राष्ट्रपति भारत की राजधानी में आने वाले विदेशी अतिथियों का स्वागत करता है। उनकी विदेश यात्राएँ विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाती है। राष्ट्रपति की विदेश यात्राएँ विदेशी राष्ट्रध्यक्षों पर एक मधुरम प्रेरणा की छाप छोड़ती है।

1.2.7 निष्कर्ष

भारत में राष्ट्रपति की स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है। फिर भी शासन में राष्ट्रपति का पद एक ऐसी घुरी है। जो संकट के समय संवैधानिक यन्त्र को सन्तुलित करता है। वस्तुतः राष्ट्रपति राज्य के अध्यक्ष केरूप में ही नहीं बल्कि भारत की स्वतंत्र आवाज केरूप में भी कार्य करता है। इसलिए राष्ट्रपति के पद की हमारी संवैधानिक व्यवस्था केरूप में ऐक श्रेष्ठ सामाजिक संस्था और एक वैधानिक जरूरत है।

1.2.8 मुख्य शब्दावली

- गणराज्य
- संघीय
- महाभियोग
- अध्यादेश
- आपातकालीन

1.2.9 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. भारत के राष्ट्रपति का कार्यकाल, वेतन भत्ते, विशेषाधिकारो और महाभियोग का वर्णन कीजिए।
2. भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों, कार्यों तथा स्थिति का वर्णन कीजिए।
3. भारत के राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. भारत के राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों को परिभाषित कीजिए।

1.2.10 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D. D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D. D. Basu and B.Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C. R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.

- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- A. Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J.Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B. L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R. L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N. G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- A. Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W. H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- A. Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N. C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.

1.3 भारतीय संसद तथा उसका कार्यकरण

(The Indian Parliament and Its Working)

1.3.1 परिचय

संसदीय संस्थाएं भारतीय शासन–तन्त्र के सदा धूमते रहने वाले पहिऐ हैं। इन संस्थाओं के कार्य–परिणामों का लेखा–जोखा हमारे नूतन गणराज्य में जनतन्त्रात्मक उद्यम के लिए महत्त्व का दस्तावेज है। हमारे संविधान के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान–मण्डल को संसद की संज्ञा दी गई है और यह संसद द्विसदनात्मक सिद्धान्त के आधार पर संगठित की गई है। संविधान के अनुच्छेद् 76 में लिखा है, ''संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी, जिसके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।'' भारत में संसदात्मक लोकतन्त्र को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का समन्वय करन सिद्धान्ततः आवश्यक था, अतः राष्ट्रपति को भी संसद का अभिन्न भाग बनाया गया है।

1.3.2 उद्देश्य

- भारतीय संसदीय प्रणाली को जानना।
- संसद के कार्यों एंव शक्तियों को समझना।
- लोकसभा व राज्यसभा के आपसी संबधो को जानना।
- संसद सदस्यों के विशेषाधिकार का जानना।

1.3.3 भारतीय संसद की संवैधानिक स्थिति (क्या संसद सम्प्रभु है?)

(Constitutional Position of Indian Parliament (Is Indian Parilament a Sovereign Body?))

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''जनतन्त्रात्मक प्रणाली का केन्द्रबिन्दु राष्ट्र की संसद है। प्रशासन की बागडोर चाहे किसी दल या वर्ग के हाथ में हो, जब तक संसद के अधिकार अक्षुण्ण है कार्यक्षेत्र तथा कार्य संचालन की दृष्टि से उसका स्वरूप सम्प्रभु है वह राष्ट्र बड़े–से–बड़े संकट का सामना कर सकता है।'' संसद की सम्प्रभुता पर विचार ब्रिटिश संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। जैसा कि सर एडवर्ड कोक का मत है, ''संसद की शक्ति और अधिकारक्षेत्र इतना सर्वोपरि और पूर्ण है कि इसकी कोई सीमाएं नहीं बाधी जा सकती। डी लोमे ने तो ब्रिटिश संसद के बारे में यहां तक कह डाला है कि ''संसद सभी कुछ कर सकती है, सिवाय स्त्री को पुरूष और पुरूष को स्त्री नहीं बना सकती है।'' वस्तुतः ब्रिटिश संसद को जो अप्रतिबन्धित शाक्तियां प्राप्त हैं इसे ही 'संसदीय सार्वभौमिकता या सम्प्रभुता' कहा गया है। संसद जो कुछ चाहे, जिस किसी भीरूप में चाहे, विधि निर्माण कर सकती है तथा ब्रिटिश संसद जो कुछ विधि स्वीकृत करेगी वह देश का कानून होगा।

भारत में संसदीय ढांचे की शासन पद्धति को अपनाया गया है जो बहुत कुछ ब्रिटिश नमूने पर आधारित है, किन्तु फिर भी हमारी शासन–व्यवस्था नितान्त संसदीय नहीं है। भारतीय संविधान का स्वरूप किसी विदेशी संविधान का अनुकरण मात्र न होकर अपने में एक अनुपम और नवीन प्रयोग है। हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से परिचित थे कि ब्रिटिश ढंग की संसदीय प्रभुत्ता स्वीकर करने में अनेक संस्थानात्कम कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती है। वे तो भारत के लिए व्यावहारिक शासन व्यवस्था चाहते थे जो कि भारतीय वातावरण में पोषित हो सके। इसी कारण भारतीय संसद को ब्रिटिश संसद की भांति सम्प्रभु नहीं बनाया गया।

भारतीय संसद की सम्प्रभुता का प्रश्न अनेक अवसरों पर वाद–विवाद का कारण बना है। केशवानन्द भारती के मामले में श्री पालकीवाला ने इसी प्रश्न को उठाते हुए संसद की शक्तियों को मर्यादित बतलाया। उनके अनुसार

संसद के श्रणिक बहुमत द्वारा बुनियादी मानव स्वतन्त्रता का हरण नहीं किया जा सकता एवं संसद संविधान के अनिवार्य और स्थायी तत्वों को संशाधित नहीं कर सकती। महान्यायवादी नीरेन डे का मत था कि संसद के संविधान संशोधन के अधिकार पर कोई सीमा नहीं लगाई जा सकती प्रायः भारतीय संसद की स्थिति की तुलना ब्रिटिश संसद से की जाती है। जो उचित नहीं है क्योंकि ब्रिटेन का कोई लिखित संविधान नहीं है ओर विधि की दृष्टि से संसद को सार्वभौम प्रभुत्ता प्राप्त है। डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार, ''भारत में प्रभुत्ता केवल जनता में निहित है, संसद के अधिकार संविधान निर्दिष्ट मात्र है।'' नारमन डी. पामर ने लिखा है, ''भारतीय संसद विस्तृत शक्तियों का प्रयोग करती है तथा महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है। यद्यपि इसका मुख्य कार्य भारत राज्य–क्षेत्र के लिए विधियों का निर्माण करना है तथापि इस दृष्टि से इसके कार्यों का सम्पादन करती है। यद्यपि इसका मुख्य कार्य भारत राज्य–क्षेत्र के लिए विधियों का निर्माण करना है तथापि इस दृष्टि से इसके कार्यों पर अनेक सीमाएं है।

संघीय प्रणाली तथा संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को न्यागिक पुननिरीक्षण की शक्ति प्रदान करने से इनकी शक्तियां सीमित हो गइै है। इसी प्रकार प्रधानमंत्री की वास्तविक शक्तियों तथा कांग्रेस दल के प्रचण्ड बहुमत के कारण भी संसद की शक्तियां हो गई है।'' संक्षेप में, भारतीय संसद की सार्वभौमिकता पर कतिपय मर्यादाएं इस प्रकार हैः

(1) लिखित संविधान संसद देश के लिखित संविधान की शिशु है। संसद की सार्वभौमिकता हमारे लिखित संविधान के विभिन्न प्रावधानों के अनुच्छेद 2451 द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि व्यवस्थापन शक्तियों का उपयोग संसद संविधान के अनुसार करेगी। अमरीकी शासन प्रक्रिया के सदृश्य भारतीय प्रणाली में भी दो प्रकार के कानूनों में अन्तर पाया जाता है। ये दो प्रकार के कानून 'साधारण कानून' और संवैधानिक कानून के नाम से जाने जाते हैं। साधारण कानून का निर्माण संवैधानिक कानून के अन्तर्गत स्थापित विभिन्न व्यवस्थापिकाओं द्वारा किया जाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि संविधान द्वारा स्थापित व्यवस्थापिकाएं संविधान के विरूद्ध कानून का निर्माण नहीं कर सकती।

(2) संघवाद सम्बन्धी प्रावधान–भारत में संघात्मक शासन–व्यवस्था होने के कारण राज्य सूची के विषयों पर संसद की कानून बनाने की शक्ति सीमित हो गई है। प्रो. टी. के टोपे ने लिखा है कि ''भारतीय संसद एक संघीय संविधान के अन्तर्गत विधायिका है। ब्रिटिश संसद के तुल्य इसकी शक्तियां असीमित नहीं है।

(3) संविधान में संशोधन संविधान के कतिपय अनुच्छेदों के संशोधनों हेतु संसद को राज्य विधानमण्डल के पुष्टिकरण पर निर्भर रहना पड़ता है। संविधान के वे अनुच्छेद जिनका सम्बन्ध केन्द्र–राज्य सम्बन्धों से हैं, यदि उनमें कोई संशोधन करना हो तो संसद को कम–से–कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों का समर्थन प्राप्त करना पड़ता है।

(4) न्यायिक पुनविलोकन संसद द्वारा पारित संविधान–विरूद्ध विधि को भारत का सर्वोच्च न्यायालय अवैद्य घोषित कर सकता है, संसदीय विधियों को महारे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता देना आवश्यक है। बी. के मुखर्जी के अनुसार, ''यह निर्णय करना न्यायापालिमका का काम है कि अमुक कानून वैधानिक है या नहीं।'' न्यायालय के इस अधिकार को न्यायिक पुनविलोकन शक्ति कहते हैं। यह सर्वविदित है कि गोपालन बनाम मद्रास राज्य, गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, केशवाननेद भारती, आदि मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने संसद द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित किया अथवा संसद की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाए।

(5) राजनीतिक परिसीमाएं– राजनीतिक दृष्टि से भी संसद लोकमत के प्रतिकूल विधियों का निर्माण नहीं कर सकती। उसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून का भी समुचित सम्मान करना होता है। संसद पर प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल का भी नियन्त्रण रहात है। प्रधानमंत्री संसद के निम्न सदन का विघटन करवा सकता है।

यह सत्य है कि हमारी संसद की शक्तियों का क्षेत्र लिखित संविधान एवं सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार द्वारा प्रितिबन्धित किया गया है, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि संसद केवल अनुमोदन करने वाली एंव प्रचार करने वाली संस्था मात्र बन गई है। वरतुतः भारत में संसद वह नींव है जिस पर हमारे लोकतन्त्र की भव्य इमारत खड़ी है। संसद वह स्रोतस्विनी है, जो अपनी अविरल, निर्मल और उन्मुक्त धारा से भारतीय लोकतन्त्र के हर खेत को सींचती है।, जिससे राष्ट्र को पोषण मिलता है। संसद हमारे देश का ऐसा केन्द्र–बिन्दु है, जहां जनता की आत्मा का वास है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में, ''संसद एक दल की नहीं, एक बल की नहीं, किन्तु सभी की है और इसलिए वह सार्वभौम है।''

यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय संसद की शक्तियों अन्य संघीय व्यवस्थापिकाओं से अधिक हैं। अमरीकी काग्रेस तथा आस्ट्रेलियन संसद राज्य सम्बन्धी विषयों पर कानून निर्माण नहीं कर सकती है, जबकि भारतीय संसद को विशिष्ट परिस्थितियों में राज्यों के लिए कानून निर्माण करने का अधिकार है। निष्कर्षतः कार्य एवं शक्ति के दृष्टिकोण से भारतीय संसद की स्थिति 'संसदीय प्रभुत्ता' तथा न्यायिक सर्वोच्चता के मध्य की है दोनों ही प्रकार की अतियों से संविधान निर्माताओं ने संसद की स्थिति की सुरक्षा की है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''संसद की असली सम्प्रभुता इसी में निहित है कि वह अपने और जनता के अधिकारों के बीच भेद न करो। यदि प्रजातन्त्र को अस्थिर और सफल बनाना है, तो संसद को अपने अधिकारों की रक्षा के साथ–साथ प्रजा की आवाज सुनने को भी सदा तैयार रहना चाहिए।

1.3.4 भारतीय संसद के कार्य एवं शक्तियां

(Powers and Functions of the Parliament)

भारतीय संसद सम्प्रभु नहीं है, किन्तु विस्तृत शक्तियों का प्रयोग करती है तथा महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है। इसकी शक्तियों का उल्लेख निम्नलिखितरूपों में किया जा सकता हैः

(1) **व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियां–** संसद को संघीय–सूची के सभी विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, सभी संघीय क्षेत्रों के लिए संसद को सदैव ही सभी विषयों पर संसद कानून बना सकती है। जब कभी दो या अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्वाव पास करके संसद से किसी विषय के बारे में कानून बनाने की प्रार्थना करें तो संसद कानून बना सकती है। इसी प्रकार जब राज्यसभा दो–तिहाई बहुमत से प्रस्वाव परित करके राष्ट्रीय हित में संसद को राज्य–सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अनुरोध करे तो संसद कानून बना सकती है।

(2) **वितीय शक्तियां**–संविधान द्वारा संसद को संघीय वित्त पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त है। सभी कर सम्बन्धी प्रस्वात तथा अनुदानों की मांगें संसद द्वारा स्वीकृत होने पर ही प्रभावी होती है। क्योंकि संविधान के अनुसार विधि के प्राधिकार के बिना न तो कर लगाया जाएगा और न एकत्रित किया जाएगा। संसद ही प्राक्कलन और लोक–लेखा समिति को नियुक्त करती है तथा नियन्त्रक व माहलेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार कर उचित कार्यवाही करती है। संसद की स्वीकृति के बिना सरकार को राष्ट्रीय वित्त में से खर्च का अधिकार नहीं होता है।

(3) **कार्यपालिका शक्तियां**–भारत में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। अतः मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति उत्तरदायी है। मन्त्रिमण्डल केवल उसी समय तक सत्तारूढ़ रह सकता है जब तक कि उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। संसद अनेक तरीकों से कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है। संसद के सदस्य 'अविश्वास के प्रस्ताव', 'निन्दा प्रस्ताव' एवं 'स्थगन प्रस्वाव' द्वारा सरकार पर नियन्त्रण रखते हैं तथा उसे उत्तरदायी बनाए रखते हैं। संसद के सदस्य मन्त्रियों से सकरारी नीतियों के सम्बन्ध में प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ

सकते हैं तथा सरकार की आलोचना कर सकते हैं। संसद सदस्य बजट को अस्वीकार करके, मन्त्रियों के वेतन में कटौती का प्रस्ताव स्वीकृत करके और सरकारी विधेयक में संशोधन करके अपना विरोध प्रदर्शित कर सकते हैं।

(4) **राज्यों से सम्बधित शक्तियां**–संविधान में संसद को यह अधिकार दिया गया है कि राज्यों की इच्छा के बिना भी वह उनकी सीमाओं तथा नामों में परिवर्तन कर सकती है, नवीन राज्य का निर्माण कर सकती है तथा किसी राज्य का अस्तित्व समाप्त कर सकती है। संसद को भारतीय नागरिकता के निर्धारण का भी अधिकार है।

(5) **संविधान संशोधन से सम्बन्धित शक्तियां**–संविधान के अनुसार संसद को यह अधिकर है कि वह संविधान में भी संशोधन कर सकती है। यहां तक कि संविधान के संशोधन की जो प्रक्रिया है उसको भी संसद संशोधित कर सकती है।

(6) **निर्वाचन सम्बन्धी कार्य**–संविधान के अनुच्छेद 54 के अनुसार संसद को कुछ निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियां प्रदान की गई हैं। संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए गठित निर्वाचक मण्डल के अंश हैं। अनुच्छेद 66 के अनुसार, संसद उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं।

(7) **महाभियोग का अधिकार**–संसद के दोनों सदनों द्वारा निर्धारित विशेष प्रक्रिया के आधार पर राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जा सकता है। इसी प्रकार उच्चतम तथा न्यायालय के न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाने तथा उन्हें पदच्युत करने का प्रस्वाव भी संसद पारित कर सकती हैं।

इस प्रकार संसद की उपरोक्त शक्तियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतीय–संसद की शक्तियों एवं कार्य विस्तृत हैं। संसद सार्वजनिक विवाद–स्थल का कार्य करती है, इस दृष्टि संसद लोकप्रिय भावना के दर्पण तथा शिक्षक केरूप में कार्य करती हैं।'' परन्तु यह बात महत्पूर्ण है कि संसद को लिखित संविधान के अन्तर्गत ही अपनी कार्यवाहियां चलानी पड़ती है। जब भी संविधान के जरिए संसद के कार्य मेंरूकावट पैदा होती है संसद संविधान कर सकती है।

1.3.5 संसद का गठन
(Composition of the Parliament)

संविधान के अनुच्छेद 79 के द्वारा व्यवस्था की गई है कि भारतीय संघ की एक संसद होगी जिसका निर्माण राष्ट्रपति तथा दो सदनों से मिलकर होगा, जिसके नाम क्रमशः राज्यसभा तथा लोकसभा होंगे। इस प्रकार भारतीय संविधान द्वारा ब्रिटिश संविधान की तरह राज्य के औपचारिक प्रधान को संसद का अंग माना गया है। 1919 और 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की गई थी और वर्तमान समय में संघात्मक विधानों में द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की जाती है। अतः इनसे प्रेरणा लेते हुए भारतीय संविधान भी संघीय क्षेत्र में एक द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना करता है, जिसका उच्च सदन राज्यसभा है, जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं तथा निम्न सदन लोकसभा में जनता द्वारा प्रत्यक्षरूप से निर्वाचित प्रतिनिधि होते है।

राज्य सभा का गठन
(Composition of Rajya Sabha)

राज्यसभा संसद का द्वितीय या उच्च सदन है। संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 हो सकती है, परन्तु आजकल यह संख्या 245 है। इनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामजद किए जाते है। ये ऐसो व्यक्ति होते है जिन्हें कला, साहित्य, विज्ञान और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष ज्ञान

और अनुभव प्राप्त हो। शेष सदस्य जनता द्वारा अप्रत्यक्षरूप से निर्वाचित होते है। वे सदस्य संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करते हैं ओर इनका चुनाव एकल संक्रमणीय मत तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार संघ के विभिन्न क्षेत्रों की विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता है। जिन क्षेत्रों में विधानसभांए नहीं होती, यहां पर राज्यसभा के सदस्यों के चुनाव के लिए विशेष निर्वाचक मण्डल गठित किए जाते है।

हमारे संविधान में इकाइयों को राजयसभा में प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर दिया गया है और अमरीका के समान भारत में संघ की छोटी–बड़ी सभी इकाइयों को द्वितीय सदन में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। इस सम्बन्ध में संविधान यह व्यवस्था करता है कि एक राजय की जनसंख्या के प्रथम 50 लाख व्यक्तियों तक हर 10 लाख व्यक्तियों के लिए एक और उसके बाद हर 20 लाख पर एक के हिसाब से प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।

डॉ. लक्ष्मीमल सिंधवी के अनुसार राज्यसभा के गठन में चार सिद्धान्त निहित हैंः अर्द्धसंघीय सिद्धान्त प्रतिनिधितव सिद्धान्त, सयुक्त पुनर्विचार और नियन्त्रण तथा सन्तुलन का सिद्धान्त तथा प्रख्यात और विशिष्ट व्यक्तियों को भारतीय राज–व्यवस्था से सम्बद्ध करने का सिद्धान्त। राज्यसभा के गठन का निकट से अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि इसके निर्वाचन की प्रक्रिया भिन्न है तथापि यह लोकसभा से मूलतः भिन्न नहीं है।जनवरी 2002 में विभिन्न राज्यों और केन्द्र–शासित क्षेत्रों को राज्यसभा में इस प्रकार प्रतिनिधित्व प्राप्त हैः

योग्यताएं और कार्यकाल–राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैः

1. वह भारत नागरिक हो।
2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।
3. वह किसी भी लाभ के पद पर न हो, विकृत मस्तिष्क का न हे, दिवालिया न हो।
4. ऐसी अन्य योग्यताएं रखता हो, जो संसद के किसी कानून द्वारा निश्चित की जाएं।

अनुच्छेद 102 के अनुसार संघ अथवा राज्यों के मन्त्री पर लाभ के पद नहीं समझे गए हैं तथा यदि कभी यह प्रश्न उठता है कि संसद के किसी सदन का कोई सदस्य उपर्युक्त योग्यताएं रखता है अथवा नहीं, तो यह प्रश्न निर्णय के लिए राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग की राय के आधार पर जो निर्णय देगा, वह अन्तिम होगा।

राज्यसभा एक स्थाई सदन होगा और इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष होगा। इसे स्थायी सदन इसलिए माना गया है कि इसकी अवधि से पूर्व राष्ट्रपति इसे भंग नहीं कर सकता और पूरी राज्यसभा का चुनवा एक साथ नहीं होता हैं। राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल यद्यपि 6 वर्ष है, परन्तु उनमें से एक तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष पश्चात् पदनिवृति हो जाएंगे और नवीन एक विहाई सदस्य पद ग्रहण करेंगे।

पदाधिकारी– संविधान के अनुच्छेद 89 (1) के अनुसार भारत को उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है तथा राज्यसभा अपने में से किसी एक सदस्य को उपसभापति निर्वाचित करती है। उपराष्ट्रपति को राज्यसभा केरूप में 40,000 रुपये मासिक वेतन मिलता है। सेवानिवृत उपराष्ट्रपति को 20000 रु0 प्रतिमाह पेंशन दिए जाने का प्रावधान किया गया है। राज्यसभा का उपसभापति जब सभा का सदस्य नहीं रह जाता, तो उसका पद रिक्त हो जाता है। वह स्वयं भी त्याग–पत्र दे सकता है अथवा सभा के सदस्यों द्वारा बहुमत से प्रस्ताव पारित कर उसे उसके पद से हटाया जा सकता है। यदि सभापति अनुपस्थित रहता है अथवा ऐसे समय में जब उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति केरूप में कार्य कर रहा हो, राज्यसभा का उपसभापति सभापति के कर्तव्यों का पालन करता है तथा यदि कभी उपसभापति का स्थान रिक्त हो, तब राज्यसभा का ऐसा सदस्य, जिसे राष्ट्रपति इस कार्य के लिए नियफक्त करे, उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा। राज्यसभा के सभापति और उपसभापति को भारत की संचित निधि में से वेतन दिया जाएगा। राज्यसभा के सभापति एवं उपसभापति को वे सम्स्त अधिकार प्राप्त होते है जो सामान्यतया विधानमंडलों के अध्यक्षों को प्राप्त रहते हैं यथा–सदस्यों को भाषण देने की अनुमति प्रदान करना,

कार्यप्रणाली सम्बन्धी प्रश्नों को तय करना, वाद–विवाद को सुसंगत बनाए रखना, विचारधीन प्रश्न पर मतदान का परिणाम घोषित करना राज्यसभा की गणपूर्ति अपनी सदस्य संख्या की 1/10 है।

राज्यसभा के कार्य और शक्तियां: लोकसभा और राज्यसभा में सम्बन्ध
(Power and Functions of the Council of States: Relations between Lok Sabha and Rajya Sabha)

राज्यसभा की रचना लोकसभा के सहयोगी और सहायक सदन केरूप में की गई है। राज्यसभा के कार्य और शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखितरूपों से किया जा सकता है:

1. **विधायी शक्तियां–** लोकसभा के साथ–साथ राज्यसभा भी विधि निर्माण सम्बन्धी कार्य करती है। संविधान के द्वारा अवितीय विधेयक के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्तियां दी गई है।अवितीय विधेयक लोकसभा या राज्यसभा–दोनों सदनों में से किसी भी सदन में पहले प्रस्वावित किया जा सकता है और दोनों सदनों से पारित होने के बाद ही राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए जाता है। व्यवहार में स्थिति यह है कि सामान्यतया सभी महत्वपूर्ण विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जाते हैं, राज्यसभा में नहीं।

   यदि दोनों सदनों में किसी विधयक के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं तो राष्ट्रपति के द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है। विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार किए जाने के बाद यदि 6 महीने की अवधि के अन्दर दूसरे सदन के द्वारा उसे स्वीकार नहीं किया जाता है, तो संयुक्त अधिवेशन बुलाया जाता है। संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा के स्पीकर द्वारा की जाती है और संयुक्त बैठक में विधयक के भाग्य का निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। (अनुच्छेद 108)। इस प्रकार औपचारिक दृष्टि से अवितीय विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदन समान स्तर पर हैं, लेकिन व्यवहार में राज्यसभा की स्थिति दो बातों की दृष्टि से निर्बल है। प्रथम बात यह है कि संयुक्त इधिवेशन बुलाने की शक्ति राष्ट्रपति को है और राष्ट्रपति द्वारा यह कार्य मन्त्रिपरिषद् के परार्मश के आधार पर किया जाता है। मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है, अतः बहुत अधिक संभावना इस बात की है कि संयुक्त अधिवेशन बुलाने के सम्बन्ध में मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के दृष्टिकोण को ही अधिक ध्यान मुं रखेगी। उदाहरण के लिए, यदि कोई विधेयक राज्यसभा से स्वीकृत, लेकिन लोकसभा से अस्वीकृत हो गया है तो संभावना इस बात की है कि इस विधेयक पर संयुक्त अधिवेशन नहीं बुलाया जाएगा ओर विधेयक अपने आप ही समाप्त हो जाएगा। द्वितीय बात यह है कि संयुक्त बैठक में विधेयक के भाग्य का निर्ण बहुमत के आधार पर किया जाता है और लोकसभा की सदस्य संख्या राज्यसभा की सदस्य संख्या से दुगनी से भी अधिक होने के कारणर इस विधेयक की स्वीकृति या अस्वीकृति, लोकसभा की इच्छानुसार ही होगी। इस प्रकार कानूनी दृष्टि से अवित्तीय विधेयको के सम्बन्ध में दोनों सदनों के समान अधिकार प्राप्त हैं, किंतु व्यवहार में राज्यसभा किसी विधेयक को पारित करने में अधिक–से अधिक 6 माह का विलम्ब कर सकती है। यह लोकसभा द्वारा इच्छित विधयक के पारित होने में स्थाई बाधा नही डाल सकती। अभी तक केवल दो बार दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई गई है। प्रथम बार 1961 में 'दहेज निषेध विधेयक' के सम्बन्ध में मतभेद दूर करने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक हुई थी। दो दिन की बैठक में मतभेद दूर हो जाने पर विधेयक पारित कर दियागया। दूसरी बार मई 1978 में 'बैंकिंग सेवा आयोग विधेयक' पर विचार के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई गई। संयुक्त बैठक में यह विधेयक उसीरूप में पारित हो गया, जिसरूप में इसे लोकसभा के द्वारा पारित किया गया था।

(2) **संविधान संशोधन की शक्ति (Power of amending the Constitution)–** संविधान संशोधन के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान ही शक्ति प्राप्त है। संविधान में संशोधन का विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है और संशोधन प्रस्वाव तभी स्वीकृत समझा जाएगा, जबकि उसे संसद

के दोनों सदनों द्वारा अलग–अलग अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से पारित कर दिया जाऐ। संशोधन प्रस्ताव पर संसद के दोनों सदनों में असहमति होने पर संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसी स्थिति में संशोधन प्रस्ताव गिर जाएगा।

व्यवहार के अन्तर्गत अब तक तीन बार संविधान संशोधन के प्रस्ताव पर लोकसभा और राज्यसभा में मतभेद की स्थिति पैदा हुई है। सर्वप्रथम, 1970 में प्रिवीपर्स समाप्त करने से सम्बन्धित संविधान संशोधन का प्रस्ताव लोकसभा में पारित होकर जब राज्यसभा में गया, तब राज्यसभा के द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया। द्वितीय,1978 में जब लोकसभा द्वारा 45वें संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर राज्यसभा में भेजा गया, तो राज्यसभा के द्वारा इस संशोधन विधेयक को 5 संशोधनों सहित पारित किया गया। ऐसी स्थिति में लोकसभा और शासन के सम्मुख दो मार्ग थे– समस्त संशोधन विधेयक को छोड़ दिया जाए या उसीरूप में स्वीकार कर लिया जाए, जिसरूप में उसे राज्यसभा के द्वारा पारित किया गया है। लोकसभा के द्वारा दूसरे मार्ग को अपनाया गया । तृतीय, 1989 में 64वें और 65वें संविधान संशोधन विधेयकों को लोकसभा द्वारा पारित किए जाने के बावजूद राज्यसभा से दो तिहाई समर्थन नहीं मिला। इस प्रकार राज्यसभा के द्वारा संविधान संशोधन के सम्बन्ध में अपनी शक्ति का परिचय दिया गया।

अब तक केवल एक संविधान संशोधन विधेयक (41वें संशोधन विधेयक, जो बाद में छोड़ दिया गया) राज्यसभा में प्रस्वतावित किया गया है, शेष सभी लोकसभा में।

(3) **वित्तीय शक्ति(Financial Power)–** राज्यसभा को कतिपय महत्वहीन वित्तीय शक्तियां भी प्राप्त हैं, यद्यपि संविधान द्वारा ही इस सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा की तुलना में निर्बल स्थिति प्रदान की गई है। संविधान के अनुसार वित्त–विधेयक पहले लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जाएंगे। लोकसभा द्वारा स्वीकृत होने पर वित्तीय विधेयक राज्यसभा में भेजे जाएंगे जिसके द्वारा अधिक–से–अधिक 14 दिन तक इस विधेयक पर विचार किया जा सकेगा। राज्यसभा वित्त–विधेयक के सम्बन्ध मे अपने सुझाव लोकसभा को दे सकती है, लेकिन यह लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है कि वह उन प्रस्तावों को माने या न माने। इस दृष्टि से भारत में राज्यसभा की स्थिति ब्रिटेन के आउस ऑफ लार्ड्स के द्वारा वित्त विधेयक पर एक माह तक विचार किया जा सकता है। संवैधानिक इतिहास में राज्यसभा के द्वारा पहली बार 1977–78 के वार्षिक बजट में 6 संशोधन करने की सिफारिश की गई, लेकिन लोकसभा ने राज्यसभा द्वारा प्रस्तावित संशोधन रद्द कर दिए।

(4) **कार्यपालिका शक्ति–** संसदात्मक शासन–व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् संसद के लोकप्रिय सदन के प्रति ही उतरदायी होती है। अतः भारत में भी मन्त्रिपरिषद् केवल लोकसभा के प्रति ही सामूहिकरूप से उतरदायी है न कि राज्यसभा के प्रति। राज्यसभा के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं और उनकी आलोचना भी कर सकते हैं, परन्तु उन्हें अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मन्त्रियों को हटाने का अधिकार नही है। यह अधिकार केवल लोकसभा को ही प्राप्त है। अतः कार्यकारिणी पर नियन्त्रण की दृष्टि से लोकसभा राज्यसभा की तुलना में निशिचतरूप से अधिक शक्तिशाली है।

(5) **विविध शक्तियां (Miscellaneous Power)–** उपर्युक्त शक्तियों के अलावा राज्यसभा को कुछ अन्य शक्तियां भी प्राप्त हैं जिनका प्रयोग वह लोकसभा के साथ मिलकर कर सकती है। ये शक्तियां और कार्य इस प्रकार हैं:

i. राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।

ii. राज्यसभा के सदस्य लोकसभा सदस्यों के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव करते है।

iii. राज्यसभा लोकसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा अन्य कुछ पदाधिकारियों पर महाभियोग लगा सकती है। महाभियोग केवल तभी पारित समझा जाता है जब दोनों सदन इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

iv. राज्यसभा के साथ मिलकर बहुमत से प्रस्ताव पास कर उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटा सकती है। उपराष्ट्रपति को पद से हटाने का प्रस्ताव प्रथम बार राज्यसभा से ही पारित होकर लोकसभा के पास जाता है।

v. एक माह के अधिक की अवधि तक यदि आपात्काल लागू रखना हो तो इस प्रकार से प्रस्ताव का अनुमोदन लोकसभा तथा राज्यसभा दोनों से होना आवश्यक है। लोकसभा के विघटन की स्थिति में केवल राज्यसभा का अनुमोदन ही आवश्यक है। आपात्काल में मौलिक अधिकारों के निलम्बन के लिए दिए गए आदेश को भी यथाशीध्र संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जाना चाहिए।

vi. बोम्मई मामले में सर्वोंच्च न्यायालय ने कहा है कि किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने के बाद राज्य की विधानसभा का विघटन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि राष्ट्रपति उद्घोषणा का संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन न कर दिया जाए।

(6) **विशेष अधिकार(Special Power)–** अन्त में राज्यसभा को दो ऐसे अन्न्य अधिकार भी प्राप्त है। जो लोकसभा को प्राप्त नहीं है और जिनका प्रयोग अकेले राज्यसभा ही करती है। इस प्रकार की शक्तियों का सम्बन्ध देश के संघीय ढांचे से है और राज्यसभा को राज्यों का एक मात्र प्रतिनिधि होने के नाते निम्न प्रकार की दो शक्तियां प्राप्त हैः

1 अनुच्छेद 249 के अनुसार राज्यसभा उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले दो–तिहाई सदस्यों के बहुमत से राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है। राज्यसभा द्वारा ऐसे प्रस्ताव पास कर दिए जाने पर संसद उस विषय पर कानून का निर्माण कर सकती है। ऐसा प्रस्ताव प्रारम्भ में एक वर्ष के लिए लागू होता है, लेकिन यदि राज्यसभा चाहे तो हर बार इसे एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

2 संविधान के अनुच्छेद 312 के अनुसार राज्यसभा ही अपने दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर नई अखिल भारतीय सेवाएं स्थपित करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे सकती है। राज्यसभा जब तक इस प्रकार का प्रस्ताव पारित न कर दें, तब तक संसद या भारत सरकार किन्हीं नवीन अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था नहीं कर सकती है।

राज्यसभा की शक्तियों के इस अध्ययन से यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि राज्यसभा न केवल द्वितीय सदन वरन् द्वितीय महत्व का सदन ही है। शक्तियों की दृष्टि से इसकी स्थिति 'ब्रिटिश लॉर्ड सभा' और 'अमरीकी सीनेट' के बीच में ही कहीं है। वास्तव में, संविधान–निर्माताओं द्वारा राज्यसभा को प्रथम सदन के सहायक और सहयोगी सदन की भूमिका ही प्रदान की गई है, प्रतिद्वन्द्वी सदन की नहीं। लोकसभा की तुलना में निर्बल होते हुए भी उसकी स्थिति और उसकी शक्तियों का महत्व है। पायली के शब्दों में, ''राज्यसभा एक निरर्थक सदन या व्यवस्थापन पर केवल रोक लगाने वाला सदन ही नहीं है। वास्तव में, राज्यसभा शासनतंत्र का एक आवश्यक अंग है, केवल दिखाने मात्र का दूसरा सदन नहीं है।''

राज्यसभा का आलोचनात्मक मूल्यांकन

राज्यसभा की स्थिति प्रारम्भ से ही पर्याप्त विवाद का विषय रही है। यद्यपि संविधान सभा का एक बहुत बड़ा बहुमत राज्यसभा की स्थापना के पक्ष में था, लेकिन दूसरी ओर सदस्यों के द्वारा द्वितीय सदन की उपयोगिता

पर सन्देह व्यक्त करते हुए एक सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना के प्रस्ताव भी लाए गए थे। संविधान सभा के प्रमुख सदस्य डॉ. अम्बेड़कर भी द्वितीय सदन के बहुत अधिक पक्ष में नहीं थे। संविधान लागू किए जाने के बाद भी अनेक बार इसकी आलोचना करते हुए इसके समाप्त कर देने तक की बात कही गई है। राज्यसभा के प्रति की गई आलोचनाओं का प्रमुखरूप से दोरूपों में, अध्ययन किया जा सकता हैः

1 रचना सम्बन्धी आलोचनाएं **(Criticisms regarding composition)**–रचना की दृष्टि से राज्यसभा की बहुत अधिक आलोचना की जाती है और इस प्रकार की आलोचना के अनेक आधार हैं। सर्वप्रथम, यह कहा जाता है कि संघात्मक व्यवस्था में द्वितीय सदन का गठन संघात्मकता अर्थात् राज्यों की समानता के सिद्धान्त के आधार पर किया जाना चाहिए, लेकिन भारत में राज्यसभा के गठन में अमरीका की सीनेट या आस्ट्रेलिया संघ के द्वितीय सदन के समान संघात्मकता के सिद्धांत का पालन नहीं किया गया है। राज्यसभा का गठन दलगत आधार पर होता है और राज्यसभा के सदस्यों द्वारा दलगत आधार पर ही कार्य किया जाता है। श्री गिरधारीलाल के शब्दों में, ''यह राज्यसभा नहीं वरन् राज्य विधानमण्डलों के राजनीतिक दलों की एक सभा है।'' ऐसी स्थिति में राज्यसभा के गठन का विशेष उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

द्वितीय, राज्यसभा के अधिकांश सदस्य अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर अपना पद ग्रहण करते हुए और इस बात का बहुत अधिक डर रहता है कि किन्हीं व्यक्तियों द्वारा धन की शक्ति या अन्य भ्रष्ट साधनों के आधार पर राज्यसभा का चुनाव जीत लिया जाएगा। व्यवहार में ऐसी कुछ घटनाएं प्रकाश में भी आई है।

तृतीय, राज्यसभा के सदस्यों को राज्य विधानसभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के आधार पर निर्वाचित किया जाता है। इस सम्बन्ध कें दोष यह ळै कि भारतीय संघ के कुछ राज्यों की विधानसभाओं में क्षेत्रीय दलों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लेते हैं, जिसे राष्ट्रीय हित में नहीं कहा जा सकता।

चतुर्थ, राज्यसभा के 12 सदस्यों को राष्ट्रपति के द्वारा मनोनीत किया जाता है और मनोनयन की यह प्रणाली नितान्त अप्रजातान्त्रिक है। कार्यपालिका के द्वारा अपनी इस शक्ति का कई बार दुरुपयोग किया गया।

पंचम, व्यवहार के अन्तर्गत राज्यसभा का प्रयोग एक राजनीतिक शरण–गृह केरूप में किया गया है। राज्यसभा में प्रायः ऐसे लोगों को स्थान दिया जाता है जो प्रत्यक्ष चुनाव से दूर भागते हैं उन्हें प्रत्यक्ष चुनाव में जनता द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है। इस प्रकार राजनीतिक दलों, विशेषरूप से सत्तारूढ़ पक्ष द्वारा अवकाश प्राप्त, अयोग्य तथा विशेष गुटों के प्रतिनिधियों को इस सभा में स्थान देकर राज्यसभा को केवल अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का साधना बना लिया जाता है।

2. शक्ति सम्बन्धी आलोचनाएं**(Criticisms regarding Power)**– संविधान के द्वारा राज्यसभा को जो अधिकार एवं शक्तियों प्रदान की गई हैं, उसके आधार पर इसे एक निरर्थक तथा अनुपयोगी सन कहा जाता है। सहीरूप में राज्यसभा की स्थिति यह है कि यह साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में 6 महीने तथा वित्त विधेयक के सम्बन्ध में 14 दिन की देरी लगा सकती है। यह मन्त्रिमण्डल को नाममात्र के लिए प्रभावित कर सकती है, क्योंकि इसे मन्त्रिपरिषद् को पदच्युत करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसके द्वारा जिन अन्य कार्यों को किया गया है जैसे राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेना, राज्य सूची के विषयों को राष्ट्रीय महत्व का घोषित करना या अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था के लिए प्रस्ताव पारित करना, उनके सम्बन्ध में आलोचकों का कहना है कि यह कार्य संविधान द्वारा स्थापित अन्य किन्हीं भी संस्थाओं या अधिकारियों को सौंपे जा सकते हैं। केवल इन कार्यों को करने के लिए राज्यसभा के अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं है। आलोचकों के अनुसार राज्यसभा को वित्तीय ओर वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में देर लगाने की जो शक्ति प्राप्त है वह हानिकारक सिद्ध हुई है और विशेष परिस्थितियों में बहुत अधिक हानिकारक

सिद्ध हो सकती है। तृतीय, आलोचकों के अनुसार लोकसभा की कार्यविधि और गठन इस प्रकार का है कि इसके द्वारा कानून निर्माण में न तो अनावश्यक जल्दबाजी को अपनाया जा सकता है ओर न ही निरंकुशता को। अतः लोकसभा पर थोड़ा या अधिक अंकुश रखने के लिए राज्यसभा का कोई औचित्य नहीं है।

व्यवहार में लोकसभा तथा राज्यसभा में सम्बन्ध

राज्यसभा के विरुद्ध एक अतिरिक्त तर्क यह है कि व्यवहार के अन्तर्गत अनेक बार लोकसभा और राज्यसभा में आपसी विरोध की स्थिति उत्पन्न होती रही है। मोरिस जान्स लिखते हैं कि ''संस्थाओं का यह स्वभाव होता है कि वे निष्ठाओं को जन्म देती हैं और जब दो संस्थाओं की स्थिति प्रायः समान होती है तो उनमें मतभेदों का उत्पन्न हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है।''

सर्वप्रथम इस प्रकार की स्थिति 1953 में उत्पन्न हुई, जब राज्यसभा ने अपने सदस्य और विधि मन्त्री श्री विश्वास को निर्देश दिया कि वे लोकसभा में उपस्थिति न हों। द्वितीय घटना भी 1953 में ही घटी, जबकि राज्यसभा ने एक प्रस्ताव पास कर मांग की थी या तो राज्यसभा की अलग लोक लेखा समिति होनी चाहिए या वर्तमान लोक लेखा समिति में राज्य सभा के भी सदस्यों को प्रतिनिधित्व देकर इसे लोकसभा की 'लोकलेखा समिति' के स्थान पर संसद की लोक लेखा समिति' कारूप दिया जाना चाहिए। लोकसभा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए इसे असंवैधानिक बताया। अन्त में पं. नेहरू ने हस्तक्षेप कर इस व्यवस्था को अपनाया कि लोक लेखा समिति तो लोकसभा की ही समिति रहेगी, लेकिन इस समिति को सहयोग देने के लिए राज्यसभा अपने 7 सदस्यों को नामांकित करेगी। 1954 में जब लोकसभा के सदस्य श्री एन. सी. चटर्जी ने राज्यसभा को 'उत्तरदायी आचरण का दोषी' बतलाया और 1963 में जब श्री एच. बी. कामथ ने राज्यसभा की तुलना 'ब्रिटिश लॉर्ड सभा' से की, तब भी ऐसी ही स्थितियां उत्पन्न हो गई।

राज्यसभा अपनी स्थिति के प्रति कुछ आवश्यकता से अधिक ही सजग रही है और कभी–कभी इसने लोकसभा के कार्यों में अनुचितरूप में बाधा डाली है। इस प्रकार की एक स्थिति 1970 में देखी गई है कि जबकि राज्यसभा ने लोकसभा द्वारा पारित प्रिवीवर्स समाप्ति का संविधान विधेयक अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में अनेक सदस्यों ने राज्यसभा को 'आर्थिक और सामाजिक प्रगति में बाधक ' बतलाते हुए इसे समाप्त करने की मांग की। मार्च 1973 में कांग्रेस के वरिष्ठ सदस्य विभूति मिश्रा ने एक गैर–सरकारी प्रस्ताव रखा, जिसमें मांग की गई कि संवैधानिक संशोधन के आधार पर राज्यसभा को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

सन् 1977–79 के वर्षों में लोकसभा और राज्यसभा की दलीय संरचना में भेद रहा और इस स्थिति ने इन दोनों सदनों के बीच विरोध की घटनाओं को जन्म दिया। सर्वप्रथम राज्यसभा ने बैंकिंग सेवा आयोग विधेयक के सम्बन्ध में लोकसभा के विचार का विरोध किया और 1977–78 के वार्षिक बजट में भी संशोधन किए, लेकिन इन दोनों बातों के सम्बन्ध में राज्यसभा का विचार स्वीकार नही हुआ। इसके बाद में लोकसभा 45वां संशोधन विधेयक पारित कर राज्यसभा में भेजा, तब राज्यसभा ने इस विधेयक को संशोधनों सहित पारित किया और लोकसभा को राज्यसभा द्वारा किए गए ये संशोधन स्वीकार करने पड़े। इसी प्रकार, 'विशेष अदालत विधेयक' में भी राज्यसभा के द्वारा जो संशोधन किए गए, लोकसभा ने उन्हें स्वीकार कर लिया।

फरवरी 1980 में भारत के संसदीय इतिहास मे पहली बार राज्यसभा ने 'राष्ट्रपतिके अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव' में ऐसे वाक्य जुड़वाए, जो नई सरकार की आलोचना करते हैं। 75 के मुकाबले 80 के बहुमत से जोड़े गए ये वाक्य हैंः ''लेकिन खेद है कि अभिभाषण में गैर–कांग्रेसी शासन वाली राज्य विधानसभाओं में दल–बदल की चिन्तापूर्ण कोशिशों को कोई उल्लेख नहीं है। न ही उसमें संघीय सिद्धांतों की घोर उपेक्षा करते हुए मनमाने ढंग से राज्य विधानसंभाएं कोशिशों पर ही चिन्ता प्रकट की गई है। अभिभाषण यह आश्वासन भी नहीं देता कि सरकार संविधान को तोड़ने–मरोड़ने और लोकतंत्रीय सिद्धांतों तथा आधार का उल्लंधन करने वाली इन कोशिशों का

प्रोत्साहन नहीं देगी।'' इन संशोधनो का महत्व इतना ही है कि ये वाक्यांश संसदीय कार्यवाही में दर्ज हो गए, पर राजनीतिक दृष्टि से यह राज्यसभा के स्वतंत्र चरित्र को उजागर करते है और राजनीतिक स्थिति में हुए भारी परिवर्तन के बावजूद शक्ति सन्तुलन बनाए रखने की चेष्टा का परिचय देते हैं।

लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल तथा दोनों सदनों के सदस्यों के चुनाव की पद्धतियों का जा भेद है उसके कारण भविष्य में भी इन सदनों की दलीय संरचना में भेद हो सकता है और इसके कारण दोनों सदनों में आपसी विरोध की स्थितियां पैदा हो सकती हैं।

राज्यसभा का महत्त्व और औचित्य

इस प्रकार की आलोचनाओं और कभी–कभी लोकसभा ओर राज्यसभा में पारस्परिक विरोध की घटनाओं के बावजूद राज्यसभा का अस्तित्व पर्याप्त उपयोगी और लाभदायक रहा है। यदि यह 'देवताओं का सदन' नहीं बन पाई तो दूसरी ओर इसने अपने आपको 'दुष्टों और प्रतिक्रियावादियों का सदन' भी नहीं बनने दिया है। राज्यसभा का महत्व और औचित्य पूर्णतया स्पष्ट है। प्रथम, राज्यसभा को संविधान के संशोधन के विषय में लोकसभा के समान शक्ति प्राप्त है। द्वितीय, राज्यसभा में से भी मन्त्रियों की नियुक्तियां की जाती है। 1966 में जब श्रीमती गांधी प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुई, उस समय वे राज्यसभा की ही सदस्य थी, 1996 में प्रधानमंत्री मनोनीत होने के बाद एच. डी. देवगौड़ा राज्यसभा के ही सदस्य बने तथा जब अप्रैल, 1997 में इन्द्रकुमार गुजराल का प्रधानमंत्री पद पर मनोनयन हुआ तो वे उस समय राज्यसभा के ही सदस्य थे। तृतीय, इस परम्परा से भी राज्यसभा के महत्व का आभास होता है कि केन्द्रीय मंत्री प्रायः राज्यसभा मे उपस्थित रहते हैं और विचार–विमर्श तथा वाद–विवाद में भाग लेते हैं। इस प्रकार राज्यसभा सरकारी नीतियों तथा कार्यों पर प्रभाव डालने में समर्थ है और व्यवहार में अनेक बार इसने शासन की नीतियों तथा कार्यों को प्रभावित किया है। राज्यसभा उन सभी कार्यों को करती है जो रम्परागतरूप में द्वितीय सदन के द्वारा किए जाते है औरभारत जैसे विशाल और सधात्मक व्यवस्था वाले देश के लिए संघात्मक व्यवस्थापिका का द्विसदनात्मक होना नितान्त स्वाभातिक और आवश्यक है। सामान्यतया राज्यसभा का कार्यकाल सफल रहा है और इसके अस्तित्व के औचित्य पर भी कोई सन्देह नहीं किया जाता है। प्रो. जितेन्द्र रंजन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''यह न तो अमरीकी सीनेट की भांति अत्यधिक शक्तिशाली है और न ही ब्रिटिश लॉर्ड सभा या फ्रांस के चतुर्थ गणतन्त्र की गणतंत्रीय परिषद की भांति अत्यधिक दुर्बल। जापानी व्यवस्था की तरह द्वितीय सदन की निषेधात्मक शक्ति (Veto Power) को हमारे संविधान में स्वीकार नहीं किया गया है। इसे सिर्फ दुहराने की पर्याप्त शक्ति दी गई है, निषेघ की नहीं। राज्यसभा न केवल रचना की दृष्टि से विश्व का सबसे अधिक श्रेष्ठ द्वितीय सदन है, वरन् यह आधुनिक प्रजातंत्र के योग्य तथा द्वितीय सदन के उद्देश्यों की पूर्ति करने की दृष्टि से भी सर्वाधिक सन्तुलित द्वितीय सदन है।''

आवश्यकता इस बात की है कि राज्यसभा के द्वारा अपने आपको लोकसभा का सहायक और सहयोगी समझा जाए, प्रतिद्वन्द्वी नहीं। पं. नेहरू ने 6 मई, 1953 को राज्यसभा में बिल्कुल ठीक ही कहा था कि ''दोनों सदनों के द्वारा परस्पर सहयोग के आधार पर कार्य किया जाना चाहिए क्योंकि इन दानों में से कोई एक नहीं, वरन् दोनों एक साथ मिलकर ही भारत की संसद का निर्माण करते हैं और भारतीय संसद केरूप में जाने जाते हैं।''

लोकसभा
(House of the People)

संघीय संसद के निम्न सदन या लोकप्रिय सदन को लोकसभा का नाम दिया गया है। लोकसभा की सदस्य संख्या समय–समय पर परिवर्तित होती रही है। संविधान में उपबन्ध है कि लोकसभा के 530 से अधिक सदस्य राज्यों में

प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रीति से चुने जाएंगे और 20 से अत्यधिक सदस्य संघ राज्य क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व करेंगे जिनका निर्वाचन ऐसी रीति से होगा जैसे संसद विधि द्वारा उपबन्ध करे। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति आंग्ला–भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो से अधिक सदस्य मनोनीत कर सकता है। इस प्रकार सदन की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो, ऐसी संविधान में परिकल्पना की गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 82 में यह भी व्यवस्था है कि प्रत्येक जनगणना के अनुसार, 'परिसीमन आयोग' (Delimitation Commission) संसद के आदेशानुसार विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व में आवश्यक परिवर्तन करेगा। निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन निर्वाचन आयोग की देखरेख ओर संसद की अंतिम स्वीकृती के अधीन किया जाता है। 1971 की जनगझाना के आधार पर परिसीमन आयोग के द्वारा अगली लोकसभा की सदस्य संख्या के सम्बन्ध में निर्णय लिए गए हैं। 42 वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार अनुच्छेद 82 में संशोधन करते हुए व्यवस्था की गई है लोकसभा और राज्यविधानसभाओं में सदस्यों की संख्या 2001 तक वही रहेगी जो 1971 की जनगणना के आधार पर निर्धारित की गई है। यह व्यवस्था 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' के आधार पर की गई है जिससे किन्हीं राज्यों को जनसंख्या में वृद्धि के आधार पर लोकसभा या विधानसभाओं में अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो सके। वर्तमान समय मुं विभिन्न राज्यों और केन्द्रशासित क्षेत्रों को लोकसभा में प्राप्त प्रतिनिधित्व तथा भविष्य के सम्बन्ध में किए गए निर्णयों को पृष्ट 322 पर दी गयी तालिका के आधार पर समझा जा सकता है। लाकसभा के सदस्यों का चुनावा प्रत्यक्षरूप से जनता द्वारा जाता है। भारत में 18 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति को वयस्क माना गया है। अब लोकसभा के सभी निर्वाचन क्षेत्र 'एकल सदस्यीय' (Single Member Constituencies) रखे गए हैं।ये निर्वाचित क्षेत्र इस प्रकार निर्धारित किए जाएंगे कि लोकसभा का एक सदस्य कम–से–कम 5 लाख जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करे। इस सम्बन्ध में अधिकतम सीमा बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित की जाती रहेगी। मूल संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों हेतु 10 वर्ष की अवधि के लिए स्थान सुरक्षित रखने थे, किन्तु बाद में यह अवधि बढ़ा दी। संविधान के 79वें संशोधन द्वारा अब आरक्षण 25 जनवरी 2010 तक के लिए कर दिया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 81 में उल्लेख है कि ''प्रतिनिधित्व का अनुपात यथासंभव समस्त देश में समान रखने का प्रयत्न किया जाएगा।'' लेकिन यह बात उन राज्यों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों पर लागू नही होगी जिनकी जनसंख्या 60 लाख से कम है। इसी प्रकार अनुच्छेद 330 द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजाति के क्षेत्रों के लिए स्थानों के आरक्षण (Reservation) के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है, वह नागालैण्ड पर लागू नहीं है, क्योंकि 1971 की जनगणना के अनुसार नागालैण्ड की 88.6 प्रतिशत जनसंख्या जनजाति क्षेत्र से सम्बन्ध हैं। 31वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार यह व्यवस्था असम के जनजाति क्षेत्रों, नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश ओर मिजोरम क्षेत्र पर भी लागू न होगी।

निर्वाचक तथा सदस्यों की योग्यता(Electors and Qualification for the Members)– लोकसभा के चुनाव में उन सभी सदस्यों को मतदान का अधिकार होगा जो भारत के नागरिक हैं, जिनकी आयु 18 वर्ष या अधिक है, जो पागल और दिवालिया नहीं है और जिन्हें संसद के कानून द्वारा किसी अपराध, भ्रष्टाचार या गैर कानूनी व्यवहार के कारण मतदान से वंचित नहीं कर दिया गया है।

लोकसभा की सदस्यता के लिए संविधान के अनुसार निम्नलिखित योग्यताएं होनी आवश्यक हैं:

1. वह व्यक्ति भारत का नागरिक हो,
2. उसकी आयु 25 वर्ष या इससे अधिक हो,

3. भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अन्तर्गत वह काई लाभ का पद धारण न किए हुए हो,

4. वह किसी न्यायालय द्वारा पागल न ठहराया गया हो तथा पागल न हो।

इन योग्यताओं के अतिरिक्त अन्य योग्यताएं निर्धारित करने का अधिकार संविधान के द्वारा संसद को दिया गया है इस अधिकार के अन्तर्गत संसद ने 1951 में 'जनप्रतिनिधित्व अधिनियम' (People Representation Act) पास कर संसद के सदस्यों के लिए निम्न योग्ताएं निश्चित की हैः

(1) अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित सुरक्षित स्थानों के उम्मीदवारों के लिए आवश्यक है कि वे अनुसूचित जाति के सदस्य हों। इसी प्रकार जनजाति से सम्बन्धित सुरक्षित स्थानों के उम्मीदवारों के लिए आवश्यक है कि वे जनजाति के सदस्य हों। ये व्यक्ति सम्स्त भारतीय क्षेत्र में किसी भी स्थान से अनुसूचित जाति या जनजाति के सदस्य हो सकते है।

(2) असम की जनजातियों के लिए सुरक्षित स्थान के उम्मीदवार बनने हेतु उसी जनजाति का होना और उस संसदीय निर्वाचन क्षेत्र या उसे जिले के किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना आवश्यक है।

(3) अन्य किसी स्थान से उम्मीदवार होने के लिए भारत में किसी भी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना आवश्यक है अर्थात् किसी निर्वाचन क्षेत्र से उसका नाम मतदाता सूची में होना चाहिए।

(4) निर्वाचन सम्बन्धी अपराध के लिए दोषी पाए गए व्यक्ति को निर्वाचन आयोग द्वारा एक निश्चित समय अथवा जीवन भर के लिए संसद का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किया जा सकता है।

(5) उसने किसी अपराध के लिए दो वर्ष से अधिक सजा न पाई हो और उसे जेल से छूटे हुए पांच वर्ष से अधिक हो गए हों।

(6) उसे सरकार से सम्बन्धित किसी ठेके में हिस्सेदार नहीं होना चाहिए और न सरकार से सम्बन्धित किसी कारखाने में उसका हित होना चाहिए।

(8) उसे बेईमानी या राजद्रोही के कारण सरकारी नौकरी से न निकाला गया हो। इस प्रकार से अपराध के 5 वर्ष बाद ही वह संसद की सदस्यता प्राप्त कर सकता है।

कार्यकाल (Term)– 42वें संवैधानिक संशोधन (1976) के पूर्व तक लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था, लेकिन इस संवैधानिक संशोधन द्वारा लोकसभा का कार्यकाल बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया। अब 44वें संवैधानिक संशोधन (1978) द्वारा पुनः यह 5 वर्ष कर दिया गया है। प्रधानमंत्री के परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति के द्वारा लोकसभा को समय के पूर्व भी भंग किया जा सकता है। ऐसा अब तक सात बार 1970, 1977, 1979, 1984, 1990, 1997 और 1999 में किया गया है। संकट–काल की घोषणा लागू होने पर संसद विधि द्वारा लोकसभा के कार्यकाल में वृद्धि कर सकती है, जा एक बार में एक वर्ष से अधिक न होगी।

लोकसभा के अधिवेशन राष्ट्रपति के द्वारा ही बुलाए और स्थागित किए जाते हैं और इस सम्बन्ध में नियम यह है कि लोकसभा की बैठक की अन्तिम तिथि ओर दूसरी बैठक की प्रथम तिथि में 6 माह से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। लोकसभा और राज्यसभा दोनों की गणपूर्ति (Quorum) कुल संख्या का दसवां भाग है।

लोकसभा के चुनाव के लिए मतदान, गठन, पहली बैठक, कार्यकाल पूरा होने तथा उसके विघटन की तारीखों का विवरण (पहली से तेहरवीं लोकसभा तक)

लोकसभा तारीख	मतदान की अन्तिम तारीख	गठन की तारीख	पहली बैठक	कार्यकाल पूरा की तारीख	भंग होने की होने की तारीख (संविधान के अनुच्छेद 93 (2))
1	2	3	4	5	6
पहली	21–02–52	02–04–52	13–05–52	12–05–57	04–04–57
दूसरी	15–03–57	05–04–57	10–05–57	09–05–62	31–03–62
तीसरी	25–02–62	02–04–62	16–04–62	15–04–67	03–03–67
चौथी	21–02–67	04–03–67	16–03–67	15–03–72	27–12–70
पांचवी	10–03–71	15–03–71	19–03–71	18–03–77	18–01–77
छठी	20–03–77	15–03–71	19–03–71	18–03–77	18–01–77
सातवीं	06–01–80	10–01–80	12–01–80	20–01–85	31–12–84
आठवीं	28–12–84	31–12–84	15–01–85	14–01–90	27–11–89
नौवीं	26–11–89	02–12–89	18–12–89	17–12–94	13–03–91
दसवीं	15–06–91	20–06–91	09–07–91	08–07–96	10–05–96
ग्याहरवीं	07–05–96	15–05–96	22–05–96	21–05–2001	04–12–97
बाहरवीं	07–03–98	10–03–98	23–03–98	22–03–2003	26–04–99
तेरहवीं	04–10–99	10–10–99	20–10–99	19–10–2004	

1. मध्यावधि चुनाव कराए, चुनावों से पहले ही लोक सभा भंग कर दी गई थी।
2. कालम (2) में दी गई मतदान की अन्तिम तारीखें निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट पर आधारित हैं।

1.3.6 संसद सदस्यों के विशेषाधिकार (Privilegses of the Memebrs of the Parilament)

संसद सदस्यों को कतिपय विशेषाधिकार प्राप्त हैं। संसदीय विशेषाधिकारों का उद्देश्य संसद की स्वंतत्रता, अधिकार और गरिमा की रक्षा करना है। ये ऐसे विशेषाधिकार हैं जिनके बिना संसद–सदस्य अपने कृत्यों का निर्वहन नही कर सकते। संविधान के अनुच्छेद 105 में संसद के सदनों तथा उनके सदस्यों के विशेषाधिकारों एंव उन्मुक्ता का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में उपबन्ध किया गया है कि ''संसद के प्रत्येक दिन और उन सदस्यों तथा समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां वहीं होंगी जो कि ''संसद के प्रत्येक दिन और उन सदस्यों तथा समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां वही होंगी जो कि संसद समय–समय पर कानून बनाकर परिभाषित करे और जब तक ऐसी परिभाषा नहीं की जाती ये वैसी की होंगी जैसी कि इस संविधान के प्रारम्भ अर्थात् 26 जनवरी, 1950 को ब्रिटेन की संसद के 'हाउस ऑफ कॉमन्स', उसके सदस्यों तथा समितियों की थी।'' अभी तक इन विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में संसद ने कोई व्यापक कानून नही बनाया है। अतः ऐसे किसी कानून के अभाव में संसद–सदस्यों को वे ही विशेषाधिकार प्राप्त हैं जो कि ब्रिटेन के संसद सदस्यों को प्राप्त हैं। 23 मार्च, 1967 को लोकसभा अध्यक्ष ने कहा कि ''संसद के विशेषाधिकारों की परिभाषा करने के लिए कानून बनाया जाए तो वह अच्छी बात है।'' संसदीय कार्यमंत्री ने भी कहा है कि ''विशेषाधिकारों की परिभाषा करने

का प्रश्न विचारधीन है।'' संविधान के अनुच्छेद 105 में संसद के सदनों तथा संसद सदस्यों के विशेषाधिकारों का उल्लेख किया गया है। ये विशेषाधिकार इस प्रकार हैंः

(1) संसद में या उसकी समिति में कही हुई किसी बात या दिए गए मत के आधार पर किसी भी न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति

(2) न्यायालय को संसद की कार्यवाही की जांच करने का निषेध।

(3) सभा के क्षेत्र के दौरान तथा उसके चालीस दिन पहले और चालीस दिन बाद तक दीवानी मामलों में सदस्यों की गिरफ्तारी से उन्मुक्ति।

(4) किसी सदस्यों की गिरफ्तारी, विरोध, कारावास तथा रिहाई के सम्बन्ध में तुरन्त सूचना प्राप्त करने का सदन को अधिकार है।

(5) सदन के सदस्यों को विचार–अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

(6) संसद–सदस्यों को जूरी सदस्यों केरूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता।

(7) जब सदन गोपनीय बैठक के लिए बैठता है तो उस समय कोई भी व्यक्ति्त, जो सदन का सदस्य नहीं है, सभाकक्षों और दीर्घाओं, इत्यादि में नहीं रह सकता।

प्रत्येक सदन स्वयं अपने विशेषाधिकारों का रक्षक है। न केवल यह किसी ऐसे विषय का एकमात्र निर्णायक है। जो किसी प्रकार विशेषाधिकार का भंग करता हो बल्कि यदि यह उचित समझे तो किसी भी ऐसे व्यक्ति को कारावास का दण्ड दे सकता है या उसकी भर्त्सना कर सकता है, जिसे वह अपमान का दोषी समझता हो। सभा की किसी ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने की शक्ति जो सभा का अपमान करे या उसके किसी विशेषाधिकार को भंग करे सबसे महत्वपूर्ण विशेषाधिकार है। इसी शक्ति के कारण संसद के विशेषाधिकार वास्तविक बनाते हैं।

सांसदों का वेतन एवं सुविधाएं– संसद सदस्यों को वेतन और भत्ता संसदीय नियमों के अनुसार प्राप्त होगा। वर्तमान समय में सांसदों का वेतन 12,000 रु0 प्रतिमास, तथा 500 रु0 प्रतिदिन दैनिक भत्ता है। इसके अतिरिक्त अन्य सुविधाएं और भत्ते इस प्रकार हैंः 10,000 रु0 प्रतिमाह की दर से निर्वाचन क्षेत्र भत्ता और 14,0000 प्रतिमाह की दर से कार्यालय व्यय भत्तां इसमें 3,000 लेखन सामग्री, आदि खर्च के लिए होंगे। इसके अलावा, हर सांसद को दो टेलीफोन सेट (एक दिल्ली और एक अपने संसदीय क्षेत्र के लिए) मुफ्त मिलते है जिस पर वह सालाना 1 लाख 20 लाख हजार की मुफ्त कॉल कर सकता है। इसी तरह वर्षभर मिलने वाली मुफ्त बिजली को 50,000 यूनिट कर दिया गया है। हर सांसद को अपनी पत्नी अथवा किसी भी एक व्यक्ति के साथ देश में कही भी वातानुकूलित प्रथम क्षेणी की मुफ्त रेल यात्रा करने की सुविधा प्राप्त है। उसे देश के भीतर मुफ्त हवाई यात्रा की भी सुविधा हासिल है। साल में उसे हवाई जहाज के टिकट मुफ्त मिलते है।

लोकसभा के अध्यक्ष का पद

(Office of the Speaker)

अध्यक्ष का पद संसदीय शासन–प्रणाली में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विश्व में जहां पर भी संसदीय पद्धति की सरकार है, वहां संसद के निम्न सदन के स्पीकर को विशेष महत्व और दर्जा प्राप्त होता है। संविधान, अध्यक्ष का निर्वाचन लोकसभा स्वयं करती है।

अध्यक्ष का कार्यकाल– अध्यक्ष निर्वाचन के समय से लेकर, उसे लोकसभा के विघटन के बाद अगली लोकसभा की पहली बैठक से फौरन पहले तक अपने पद पर रहता है। वह दुबारा चुना जा सकता है। अध्यक्ष यदि

लोकसभा सदस्य न रहे तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है। लोकसभा के विघटन पर, यद्यपि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों लोकसभा के सदस्य नहीं रहते, केवल उपाध्यक्ष ही अपना पद छोड़ता है। जब भी अध्यक्ष का पद रिक्त हो जाता है, इस सम्बन्ध में एक अधिसूचना बजट में प्रकाशित की जाती है। अध्यक्ष को अपने सारे कार्यकाल में अपने पद के कृत्यों का निर्वहन करना पड़ता है। स्थान से अनुपस्थिति होने या बीमारी की दशा में वह अपने काम उपाध्यक्ष को नहीं सौंप सकता। अध्यक्ष किसी भी समय उपाध्यक्ष को पत्र लिखकर अपने पद से त्याग–पत्र दे सकता है।

अध्यक्ष का हटाया जाना–अध्यक्ष को लोकसभा में, उसके उस समय के सदस्यों के बहुमत से संकल्प पास करके, उनके पद से हटाया जा सकता है। ऐसे संकल्प को प्रस्तावित करने के लिए कम–से–कम चौदह दिन की सूचना देनी पड़ती है। चौदह दिन का हिसाब लगाते समय प्रारम्भ और अन्त के दोनों दिन छोड दिए जाते हैं। जो सदस्य अध्यक्ष को पदच्युत करने के संकल्प की सूचना देना चाहे उसे यह सूचना लिखितरूप में सचिव को देनी पड़ती है। लोकसभा की बैठक में, जब अध्यक्ष को पदच्युत करने के संकल्प पर विचार हो रहा हो तो वह सभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

अध्यक्ष द्वारा शपथ ग्रहण– अध्यक्ष को अपना पद संभालने पर शपथ नहीं लेने पड़ती और न ही प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। वह लोकसभा के सदस्य के नाते ही शपथ ग्रहण करता है।

अध्यक्ष की शक्तियां और कृत्य– लोकसभा का सबसे शक्तिशालीरूढ़िगत और औपचारिक प्रधान लोकसभा का अध्यक्ष है। सभा में उसका प्राधिकार सर्वोच्च है। यह प्राधिकार अध्यक्ष की अन्नय निष्पक्षता पर आधारित है। उसकी शक्तियों तथा उसके कर्तव्यों का उल्लेख नियमों में तथा कुछ हद तक संविधान में किया गया है। जिन नियमों के अनुसार उसे अपना काम करना होता है, वे नम्य हैं और कुछ मामलों में उसे अपने विवेक से काम लेना पड़ता है। उसके कर्तव्य बड़े कठिन हैं, जो इस प्रकार हैः

(1) जहां तक संसद के दोनों सदनों के परस्पर सम्बन्धों का प्रश्न है, उनमें कुछ मामलों में संविधान ने अध्यक्ष को विशेष स्थिति प्रदान की है। यह निर्णय अध्यक्ष ही करता है कि कौन से विषय 'धन' सम्बन्धी विषय हैं क्योंकि वे लोकसभा के अन्न्य अधिकार–क्षेत्र में आते हैं। यदि अध्यक्ष किसी विधेयक के सम्बन्ध में यह प्रमाण–पत्र दे दे कि धन–विधेयक है तो उसका निर्णय अन्तिम होगा।

(2) जब भी दोनों सदनों के बीच किसी विधान के सम्बन्ध में मतभेद होने पर संयुक्त बैठक बुलाई जाती है तो उसकी अध्यक्षता लोकसभा का अध्यक्ष करता है और बैठक के सम्बन्ध में प्रक्रिया नियम उसके निर्देशों तथा आदेशों के अन्तर्गत लागू होते हैं।

(3) जब किसी प्रश्न के पक्ष और विपक्ष में बराबर–बराबर मत आते हैं तो स्पीकर निर्णायक मत देता है।

(4) संविधान के अनुसार उसे लोकसभा की बैठक स्थागित करने या गणपूर्ति न होने की दशा में बैठक निलम्बित करने की भी शक्ति प्राप्त है।

(5) उसे यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपने विवेक से किसी ऐसे सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे जो अपने विचार हिन्दी या अंग्रेजी में भलीभांति व्यक्त नहीं कर सकता।

(6) कार्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष सभा की बैठक के प्रारम्भ तथा समाप्त होने का समय नियुक्त करता है ओर निर्णय करता है कि सभा की बैठक किस–किस दिन होगी। वह यह भी निर्णय करता है कि किस समय सभा की बैठक अनिश्चित काल के लिए या किसी अन्य दिन, या उस दिन के किसी समय तक के लिए स्थगित की जाती है।

(7) सदन के नेता से परामर्श करके वह सरकारी कार्य का क्रम निर्धारित करता है और यदि उसका समाधान हो जाए कि उस क्रम में परिवर्तन करने का समुचित आधार है तो उसे वह बदल सकता है।

(8) अध्यक्ष को लोकसभा में दलों तथा समूहों को मान्यता देने की भी शक्ति प्राप्त है।

(9) वह लोकसभा की कार्यवाही का संचालन करता है।

(10) लोकसभा की गुप्त बैठकों में अध्यक्ष ही यह निर्णय करता है कि कार्यवाही का वृतान्त कैसे तैयार किया जाए और ऐसे अवसरों पर किस प्रक्रिया का पालन किया जाए।

(11) लोकसभा में व्यवस्था बनाए रखना अध्यक्ष की जिम्मदारी है और वह सदस्यों से नियमों का पालन करवाता है। कौल तथा शकधर के अनुसार, ''सभा में व्यवस्था बनाए रखना अध्यक्ष का मूल कर्तव्य है। उसकी अनुशासनात्मक शक्तियों का उद्‌गम सभा नियम हैं और अनुशासन सम्बन्धी मामलों में उनके निर्णय को सिवाय मुख्य प्रस्ताव के माध्यम से और किसी प्रकार की चुनौती नहीं दी जा सकती।'' अध्यक्ष किसी सदस्य के भाषण की असंगत बातों या उसमें दोहराई जाने वाली बातों को रोक सकता है। जब कोई सदस्य किसी के लिए कोई अनुचित या अपमानजनक बात कहे तो अध्यक्ष उसे रोक सकता है और उससे कह सकता है कि या तो अपने शब्द वापस ले या उनके लिए खेद प्रकट करे। अध्यक्ष अपने स्वविवेक का प्रयोग करके वाद–विवाद में प्रयुक्त अपमानजनक या अश्लील शब्दों या किसी ऐसे सदस्य द्वारा कही गई किसी बात को कार्यवाही के वृतान्त से निकाल सकता है, जिसे बोलने के लिए अनुमति न दी गई हो। जो सदस्य उच्छृंखल व्यवहार का दोषी हो उसे अध्यक्ष सभा का त्याग करने के लिए कह सकता है। यदि कोई सदस्य अध्यक्ष के अधिकार की अवहेलना करे और लगातार सभा की कार्यवाही में बाधा डालता रहे तो अध्यक्ष उसका नाम लेकर उसे सभा से निलम्बित कर सकता है। यदि लोकसभा में शोरगुल और अव्यवस्था हो तो वह सभा को स्थगित कर सकता है या उसका कार्य निलम्बित कर सकता है।

(12) वह अध्यक्ष ही तय करता है कि कब किस सदस्य को बोलने का अवसर दिया जाये और उसे कितनी देर बोलने दिया जाये। जब भी आवश्यक हो वह भाषण की समय सीमा निर्धारित कर सकता है।

(13) वह सभा के विचार के लिए प्रस्ताव प्रस्तावित करता है और उन प्रस्तावों को सत्ता के निर्णय के लिए उसके सामने रखता है। सदस्य जो व्यवस्था का प्रश्न उठाते है, उन पर अध्यक्ष ही अपना निर्णय देता है और उसका निर्णय अन्तिम होता है।

(14) अध्यक्ष संकल्पों तथा प्रस्तावों की ग्राह्यता का निर्णय करता है। प्रश्नों की ग्राहणता के समान उसे संकल्पों तथा प्रस्तावों को स्वीकार करने के सम्बन्ध में भी सामान्यरूप से विवेकाधिकार है। वह यह निर्णय करता है कि मन्त्रिपरिषद् पर अविश्वास का प्रस्ताव नियमानुकूल है या नहीं और कटौती प्रस्ताव अर्थात् अनुदानों की मांग में कटौती करने का प्रस्ताव वियमों के अन्तगर्त ग्राह्य है या नहीं

(15) अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह विधेयकों तथा संकल्पों के सम्बन्ध में रखे गए संशोधन में से कुछ को सभा के सामने पेश करने के लिए चुन सकता है और किसी भी ऐसे संशोधन को सभा के सामने रखने से इन्कार कर सकता है जो उसके विचार में तुच्छ हो।

(16) लोकसभा में याचिकाएं पेश करने के लिए अध्यक्ष की स्वीकृति आवश्यक है।

(17) लोकसभा के नेता के परामर्श से वह बजट, विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक पर सभा द्वारा विचार के लिए दिन और समय नियत करता है।

(18) उसकी सहमति के बिना किसी सदस्य, सभा या उसकी सहमति के विशेषाधिकार भंग के सम्बन्ध में कोई प्रश्न सभा में नहीं उठाया जा सकता।

(19) सभी संसदीय समितियों पर अध्यक्ष का सर्वोच्च नियन्त्रण है। वह उनके सभापतियों की नियुक्ति करता है और उनके काम के संगठन या उनके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में ऐसे निर्देश दे सकता है जो वह आवश्यक समझे। वह उनके साथ समय–समय कर परामर्श करता है ओर उनका मार्ग–दर्शन करता है। समितियों के सम्बन्ध में कुछ शक्तियां अध्यक्ष के लिए आरक्षित हैं। कोई समिति पहले अध्यक्ष से अनुमति लिए बिना संसद भवन से बाहर अपनी बैठक नही कर सकती है और उसकी पूर्व स्वीकृति लिए बिना राज्य सरकार के अधिकारियों को गवाही देने के लिए बुला सकती है।

(20) सभा की कतिपय समितियां जैसे 'कार्य मन्त्रणा समिति' अध्यक्ष के नेतृत्व में ही काम करती हैं और अध्यक्ष ही उनका सभापति होता है।

(21) जहां तक लोकसभा या उससे सम्बन्धित मामलों का प्रश्न है, उनके बारे में संविधान तथा नियमों की व्याख्या करने का अधिकार अध्यक्ष को है और कोई भी सरकार इस सम्बन्ध में अध्यक्ष के साथ वाद–विवाद नहीं कर सकती।

(22) अध्यक्ष अपने आसन पर बैठकर जो विचार प्रकट करता है वह उनके सम्बन्ध में सार्वजनिकरूप से या समाचारपत्रों में किसी वाद–विवाद में नहीं पड़ता।

(23) अध्यक्ष सभा में निधन सम्बन्धी निर्देश भी करता है, सभा की अवधि समाप्त होने पर विदाई भाषण देता है और साथ ही महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय घटनाओं के सम्बन्ध में औपचारिक अवसरों पर भी भाषण देता है।

(24) लोकसभा के नियमों के अन्तर्गत अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त हैं कि जब कोई विधेयक पास हो जाऐ तो वह उसमे प्रत्यक्ष गलतियों को शुद्ध करता है और अन्य ऐसे परिवर्तन कर सकता है जो सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों के आनुषांगिक हों।

(25) जब कोई विधेयक संसद द्वारा पारित कर दिया गया है और उस मसय सभा में हो तो अध्यक्ष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए भेजने से पहले उस पर हस्ताक्षर करके उसे प्रमाणित करें

(26) अध्यक्ष सचिवालय का प्रमुख है जो कि उसके नियन्त्रण तथा निर्देशों के अन्तर्गत कार्य करता है। लोकसभा के समस्त कर्मचारियों, उसके परिवार तथा सुरक्षा के सम्बन्ध में अध्यक्ष का अधिकार सम्पूर्ण है सभी अजनबी, आगन्तुक तथा समाचारपत्रों के संवाददाता उसके अनुशासन तथा आदेशों के अधीन हैं।

(27) लोकसभा के सदस्यों के अधिकारों की रक्षा उसकी जिम्मेदारी है। वह सदस्यों के लिए समुचित सुविधाओं की व्यवस्था करता है। अध्यक्ष की अनुमति लिए बिना किसी भी सदस्य को सभा के परिसर में न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न फौजदारी या दीवानी कानून के अन्तर्गत कोई आदेशिका उसे दी जा सकेगी।

(28) लोकसभा के अध्यक्ष को मन्त्रियों से पूछे जाने वाले प्रश्नों के सम्बन्ध में विभिन्न शक्तियों दी गई हैं। यद्यपि प्रश्नों की ग्राह्यता के सम्बन्ध में मार्गदर्शक सिद्धांत नियमों में दिए गए हैं, परन्तु उनका निर्वाचन करने की शक्ति अध्यक्ष के हाथ में है। अध्यक्ष यह फैसला कर सकता है कि किसी प्रश्न का मौखिक के स्थान पर लिखित उत्तर उपयुक्त होगा।

उपयुक्त शक्तियों तथा कृत्यों से स्पस्ट है कि हमारी लोकसभा के अध्यक्ष की विशाल शक्तियां हैं। इन शक्तियों एवं अधिकारों के प्रयोग से ही वह हमारी विशाल सभा का सफलतापूर्वक संचालन एंव नंतृत्व करता है।

संसदीय शासन के विकास में अध्यक्ष की भूमिका– अध्यक्ष की कोई राजनीति नहीं होती उसे संसदीय शासन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होता है। उसके पास और कुछ नहीं होता, केवल अपने व्यक्तित्व, अपनी आवाज, महत्व और गौरव से ही वह सदन की व्यवस्था को बनाए रखता है। सारे सदन की सत्ता उसके पीछे होती है। श्री जी.वी. मावंलकर लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष थे। सन् 1952 से 27 फरवरी, 1956 तक वे लोकसभा के अध्यक्ष रहे। 27 फरवरी, 1956 को उनका देहान्त हो गया। पूरे देश मे उनके असामायिक देहावसान पर शोक मनाया गया। उन्होंने अपने कार्यकाल में अनेक ऐसी परंपराएं डाली कि उन्हें लोकसभा का पिता कहा जाता है। उन्होंने यह घोषणा की कि वे अध्यक्ष के पद पर निष्पक्ष रहने की पंरपरा का तो पालन करेंगे, किन्तु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से अपना सम्बन्ध नहीं तोडेंगे। उनका तर्क था कि जिस संस्था के झण्डे के नीचे उन्होंने स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी है, उससे कैसे सम्बन्ध विच्छेद किया जा सकता है? उन्होंने लोकसभा का मार्गदर्शन निष्पक्षता, गरिमा तथा प्रतिष्ठा के साथ किया। उन्होंने विधानमण्डल के पीठासीन अधिकारियों को निष्पक्ष रहने का परामर्श दिया। मावंलकर के पश्चात् श्री अनन्तशयनम् आयंगर को 8 मार्च 1956 को अध्यक्ष पद पर निर्वाचित किया गया । उन्होंने 1962 तक अध्यक्ष पद कर कार्य किया। वे अपने कर्तव्य पालन में बहुत कठोर थे और कभी–कभी सदन की कार्यवाही में हंसी–मजाक का पुट भी ला देते थे। जब आयंगर को बिहार का राज्यपाल बनाया गया तो उनके स्थान पर सरदार हुकमसिंह को तीसरी लोकसभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। दूसरी लोकसभा के उपाध्यक्ष केरूप में उन्होंने पूरे देश में विशिष्ट ख्याति अर्जित कर ली थी और तीसरी लोकसभा की अध्यक्षता के कार्य को उन्होंने अपनी योग्यता, प्रतिभा तथा संसदीय विद्वता से कुशलतापूर्वक चलाया। चतुर्थ लोकसभा की अध्यक्षता का भार श्री संजीव रेड्डी पर डाला गयां इस समय बदली हुई दलीय स्थिति में उन्हें कार्य करना पड़ा। सदन में काग्रेस दल का उतना बहुमत नही था जितना कि पूर्व की लोकसभाओं में था। उन्होंने अध्यक्ष पद पर निर्वाचित होते ही कांग्रेस दल से अपना समबन्ध विच्छेद कर लिया। संजीव रेड्डी ने राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने हेतु लोकसभा की अध्यक्षता से त्याग–पत्र दे दिया। उनके बाद श्री गुरुदयालसिंह ढिल्लन को लोकसभा का अध्यक्ष बनाया गया। डॉ0 ढिल्लन के दूसरी बार अध्यक्ष पद पर चुने जाने पर प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में कहा था– ''सभा का पिछले दो वर्ष का समय शान्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। सभा के छोटे–बड़े हंगामे, जटिल संवैधानिक मामले, प्रक्रिया सम्बन्धी विवाद, कुछ व्यवस्था के प्रश्न उठाए जाते रहे हैं, किन्तु श्री ढिल्लन ने सदैव संसदीय आचरण के मूल सिद्धांतों को कायम रखते हुए तथा अपनी सौजन्यता एवं निष्पक्षता जो उनकी विशेषताएं हैं में ढील नही आने दी।'' श्री ढिल्लन के मन्त्रि–पद ग्रहण करने के बाद श्री बलीराम भगत को अध्यक्ष पद पर आसीन किया गया। वे लोकसभा के छठे अध्यक्ष थे। उन्होंने कहा था, ''क्योंकि लोकसभा का अध्यक्ष सभी दलों के प्रति समानरूप से उतरदायी है इसलिए उसका निष्पक्ष होना बहुत आवश्यक है। इस दिशा में भूतपूर्व अध्यक्षों ने जो नियम, आदर्श और परम्पराएं कायम की है, में उनका यथाशक्ति अनुकरण करूंगा।'' श्री बलीराम भगत (जनवरी, 1975 मार्च 1975) के बाद भी नीलम संजीव रेड्डी और उसके बाद के.एस. हेगड़े ने लोकसभा की उच्च परंपराओं को निष्ठापूर्वक संवारा और सृदृढ़ किया। 1980–89 की लम्बी अवधि तक श्री बलराम जाखड़ लोकसभा के 'स्पीकर' पद पर आसीन रहे। बोर्फार्स मुद्दे पर दबाव में आई राजीव सरकार को बचाने के लिए बलराम जाखड़ ने जेहादी उत्साह दिखाया। उन्होंने लोक लेखा समिति की अध्यक्षता विपक्ष के किसी सदस्य को दने की 19 साल पुरानी परम्परा उलट दी और उस समय इंका की सहयोगी अन्नाद्रमुक के एक सदस्य को इसका अध्यक्ष बना दिया। श्री रविराय दिसम्बर 1989 में नवीं लोकसभा चुनावों के बाद स्पीकर पद सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए। दसवीं लोकसभा के चुनाव (1991) के बाद श्री शिवराज पाटिल लोकसभा अध्यक्ष चुने गये। शिवराज पाटिल ने स्पीकर पद की खोई गरिमा को कुछ–कुछ सीमा तक बहाल करने का प्रयास किया वे आयित्व पूरा न करने वाले विपक्षी सदस्यों, दोनों को फटकारते। उन्होंने सदन की कार्यवाही आमतौर पर इस प्रकार चलाई कि वे आलोचना से बचे रहे। 11वीं लोकसभा (1996) के चुनावों के बाद

पी.ए. संगमा अध्यक्ष पद निर्विरोध निर्वाचित हुए। अपनी निष्पक्षता, योग्यता एवं लोकप्रियता के कारण उन्होंने अध्यक्ष पद की गरिमा में अपूव्र वृद्धि की। 12वीं एवं 13वीं लोकसभा चुनावों के बाद तेलूदशम के श्री बालयोगी स्पीकरपद पर आसीन हैं।

श्यामलाल शकधर लिखते है ''अनन्तश्यनम् आयंगर के अध्यक्ष काल में सभा की कार्यवाहियों में गतिशीलता तथा सजीवता देखने को मिली, सरदार हुकमसिंह ने अध्यक्ष पद को प्रतिष्ठा, गरिमा तथा कृत्यों और विचारों में परिपक्वता द्वारा उन्नत बनाया। डॉ0 संजीव रेड्डी ने अपना कार्यकाल निष्पक्षता तथा सभा की कार्यवाहियों में सजीवता से पूर्ण किया।'' इस प्रकार भारत में संसदीय शासन के विकास में अध्यक्ष की महत्वपूर्ण भुमिका रही है। उनका व्यक्तित्व एवं योगदान सराहनीय रहा है जिससे संसद की मान–मर्यादा बढ़ी है।

अध्यक्ष की वास्वतिक स्थिति

(Actual Position of the Speaker)

अध्यक्ष सदन की प्रतिष्ठा, शक्ति तथा गौरव का द्योतक है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री नेहरू के शब्दों में, ''अध्यक्ष सभा का प्रतिनिधि है। वह सभा की गरिमा और उसकी स्वतंत्रता का प्रतीक है और चुंकि सभा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। अतः एक तरह से अध्यक्ष राष्ट्र की स्वतंत्रता और आजादी का प्रतीक बन जाता है। अतः यह उचित ही है कि अध्यक्ष पद सम्मानित पद है। उसकी स्वतंत्र स्थिति है और उस पद पर वही व्यक्ति आसीन होने चाहिए जो साधारणरूप से योग्य तथा निष्पक्ष हो।'' लोकसभा के भूतपूर्व सचिव एम. एन. कौल के अनुसार, ''यद्यपि साधारणतया अध्यक्ष अध्यक्षता करता है, निगरानी रखता है तथा विवादों को नियन्त्रित करता है, लेकिन उसकी स्थिति इतनी महत्वपूर्ण है कि किसी भी संकट में उसकी शक्तियां राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। यथार्थ में भारतीय संसदीय व्यवस्था में लोकसभा का अध्यक्ष उस सन्तुनक चक्र के समान है, जिससे कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के सम्बन्ध में सरकार की ओर से मैं यह कहूंगा कि हम यह चाहेंगे कि माननीय अध्यक्ष अब और हमेशा सदन की स्वतंत्रता की रक्षा प्रत्येक प्रकार के खतरे से करेंगे– कार्यपालिका के अतिक्रमण के खतरे से भी। यह खतरा हमेशा बना रहता है कि एक राष्ट्रीय सरकार अल्पसंख्यकों के विचारों का दमन करने का प्रयत्न करे और ऐसी स्थिति में अध्यक्ष का यह दायित्व हो जाता है कि वह सदन के प्रत्येक सदस्य तथा प्रत्येक इकाई की एक प्रभुत्वपूर्ण सरकार की रक्षा करे।''

अध्यक्ष के निर्णय नजीरें हैं जिनसे आगे वाले अध्यक्षों, सदस्यों तथा अधिकारियों का पथ–प्रदर्शन होता है। ऐसी नजीरों का संग्रह कर लिया जाता है ओर समय आने पर यही या तो प्रक्रिया नियमों में परिवर्तित हो जाती हैं और या परिपाटियों केरूप में इनका अनुसरण किया जाता है। अध्यक्ष के निर्णयों को केवल प्रस्ताव रखकर ही चुनौती दी जा सकती है, वैसे उन पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। जो सदस्य अध्यक्ष के विनिर्णय पर विरोध प्रकट करता है वह सभा और अध्यक्ष के अपमान का दोषी होता है। अध्यक्ष अपने निर्णय के कारण बताने के लिए बाध्य नहीं होतां अध्यक्ष द्वारा दिए गए विनिर्णय या व्यक्त किए गए विचार या दिए गए वक्तव्य की आलोचना नहीं की जा सकती।

लोकसभा का अध्यक्ष भारतीय संसदीय समूह का पदेन सभापति होता है जो भारत में अन्तर्संसदीय संघ के राष्ट्रीय समूह और राष्ट्रमण्डल संसदीय संस्था की मुख्य शाखा केरूप में काम करता है। वह राज्यसभा के सभापति के परामर्श से विदेशों को जाने वाले विभिन्न संसदीय प्रतिनिधिमण्डलों के लिए सदस्यों का नाम निर्देशन करता है। कभी–कभी वह स्वयं इन प्रतिनिधिमण्डलों को नेतृत्व करता है।

संसदीय सचिवालय और सदन की इमारत अध्यक्ष के नियंत्रण में होती है। इस दिशा मे सारा प्रशासन अध्यक्ष के आदेश से ही चलता है। सदन के कार्य को चलाने सम्बन्धी सारे अधिकार भी अध्यक्ष को प्राप्त होते हैं।

प्रो. पायली के अनुसार कुछ ही वर्षों के भीतर लोकसभा के अध्यक्ष पद ने सदन की गरिमा को अपनी निष्पक्षता द्वारा बनाए रखा है। प्रारम्भ में मावलंकर जैसे अध्यक्ष इस विचारधारा के थे कि सदन में वह निर्दलीय व्यक्ति के समान आचरण करे, किन्तु सदन के बाहर वह दलगत निष्ठाएं रख सकता है, परन्तु बाद के अध्यक्षों जैसे नीलम संजीव रेड्डी तथा गुरुदयाल सिंह ढिल्लन ने अध्यक्ष–पद धारण करते ही दल की राजनीति से संन्यास ले लिया। अध्यक्ष को भारत में सातवां स्थान प्राप्त है, जो सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बराबर का है।

अध्यक्ष को लोकसभा के अभिभावक का–सा दायित्व निभाना होता है। सदन में व्यक्तिगत आरोप–प्रत्यारोप के बजाय स्वस्थ विचारों के आदान–प्रदान को समुचित अवसर प्रदान करना होता है।

एंरिकन ने कहा है– ''अध्यक्ष की तटस्थता में विश्वास प्रक्रिया के सफलरूप से संचालन के लिए अनिवार्य है। बहुत सी परिपाटियां ऐसी हैं जिनका उद्देश्य ने केवल यह है कि अध्यक्ष की तटस्थता बनी रहे बल्कि यह भी कि उसकी तटस्थता को सभी स्वीकार करें।'' भारत में अध्यक्षता करने वाले व्यक्तियों ने दलगत राजनीति से ऊपर उठकर कार्य किया है जिससे उनकी गरिमा में वृद्धि हुई है।

भारतीय अध्यक्ष की ब्रिटिश और अमरीकी अध्यक्ष से तुलना
(Comparison of Indian Speaker with British and American Speaker)

ब्रिटेन की भांति भारत में लोकसभा के अध्यक्ष का दर्जा बहुत सम्मान का है। भारत के अध्यक्ष की स्थिति इंग्लेण्ड और अमरीका के बीच की है।इसका कारण यह है कि भारत में लोकसभा का अध्यक्ष न तो अपना सम्बन्ध राजनीतिक दलों से और दलगत राजनीति से इतना तोड लेता है जितना ब्रिटेन में और न ही पद ग्रहण करने के बाद वह इतना पक्षपात करता है जितना अमरीकी प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष। भारत में अध्यक्ष अपने चुनाव के बाद अपने दल से पूर्णतया सम्बन्ध–विच्छेद नहीं करता है, परन्तु सक्रिय दलीय राजनीति में भाग नहीं लेता है। वह सदन की कार्यवाही अत्यन्त निष्पक्षरूप से चलाता है। सरदार हुकमसिंह का यह कथन भारतीय अध्यक्ष की निष्पक्षता का कितना सुन्दर उदाहरण है–''आपको मालूम होगा कि एक तरफ जहां विरोधी दलों के कुछ सदस्यों ने मेरी निष्पक्षता को चुनौती दी है, वहीं दूसरी और सत्तारूढ़ दल के सदस्यों ने प्रतिपक्ष के प्रति मेरे झुकाव की शिकायत की है। क्या प्रतिक्रिया का यह अर्न्तविरोध मेरी निष्पक्षता का प्रमाण नहीं है?'' फिर भी भारत में अध्यक्ष को वह सम्मान नहीं मिल पाया जो ब्रिटेन में अध्यक्ष को प्राप्त है। वहां अध्यक्ष अपने दल से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता है और उसका निर्वाचन भी निर्विरोध होता है। अध्यक्ष के निर्वाचन के समय पी.जी. मावलंकर ने कहा कि ''यदि कुछ विरोधी दलों के सदस्यों ने अपना विरोध किया है उसका भाव आपका वयक्तिगत विरोध करना यही था, वह विरोध तो मात्र इसलिए था कि आप कांग्रेसी उम्मीदवार थे।'' 18 दिसम्बर, 1954 को तो लोकसभा में अध्यक्ष के विरुद्ध प्रस्ताव भी पेश किया गया। विरोधी दल आम चुनाव में अध्यक्ष के विरुद्ध प्रत्यक्षी भी खड़ा करते रहे हैं सदन में अध्यक्ष के निर्वाचन के समय भी विपक्षी दलों ने अपने प्रत्यशी खड़े किए हैं। श्री मॉरिस जोन्स अपनी पुस्तक (Parliament in India) में एक स्थान पर लिखते हैं ''अध्यक्ष पदधारी व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह निष्पक्षतापूर्वक आचरण करे और सभी व्यक्तियों को उसकी निष्पक्षता में पूर्ण विश्वास हो।'' अध्यक्ष की निष्पक्षता में सभी व्यक्तियों का विश्वास हो इसके लिए आवश्यक हे कि लोकसभा के सदस्य द्वारा अध्यक्ष चुने जाने के बाद अपानी दलगत निष्ठाओं का त्याग कर दिया।

लोकसभाकी शक्तियाँ और कार्य
(Power and Functions of Lok-Sabha)

भारतीय संसद के दो सदनों मे लोकसभा लोकप्रिय सदन है, क्योंकि इसके गठन का आधार जनसंख्या है और लोकसभा के सदस्यों को जनता के द्वारा प्रत्यख निर्वाचन के आधार पर निर्वाचित किया जाता है। संसदीय व्यवस्था का यह निश्चित सिद्धान्त है कि कानून निर्माण और प्रशासन पर नियंत्रण की अन्तिम शक्ति लोकप्रिय सदन

को ही प्राप्त होती है। भारतीय संविधान द्वारा भी लोकसभा को राज्यसभा की तुलना में उच्च स्थिति प्रदान की गई है। संसद लोकसभा, राज्यसभा तथा राष्ट्रपति से मिलकर बनती हैं, लेकिन लोकसभा संसद की सबसे अधिक महत्वपूर्ण इकाई है। लोकसभा की शक्तियां तथा उसके कार्यों का अध्ययन निम्नरूपों में किया जा सकता हैः

(1) विधायी शक्ति– संविधान के अनुसार भारतीय संसद संघ सूची, समवर्ती सूची, अवशेष विषयों और कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयो पर कानूनों का निर्माण कर सकती है। यद्यपि संविधान के द्वारा साधारण अवित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्रदान की गई है। संविधान मे कहा गया है कि इस प्रकार के विधेयक दोनों में से किसी एक सदन में प्रस्तावित किए जा सकते है ओर दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाने पर राष्ट्रपति द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाए जाने की व्यवस्था है और लोकसभा के सदस्य संख्या राज्यसभा की संख्या की दुगनी से भी अधिक होने के कारण सामान्यतया इस बैठक में विधेयक के भाग्य का निर्माण लोकसभा की इच्छानुसार ही होता है। इस प्रकार कानून निर्माण के सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति लोकसभा के पास है और राज्यसभा साधारण अवित्तीय विधेयक को 6 महीने तक रोके रखने के अलावा और कुछ नहीं कर सकती है। व्यवहार के अन्तर्गत अब तक महत्वपूर्ण विधेयक लोकसभा में ही प्रस्ताविक किए जाते रहे हैं।

(2) वित्तीय शक्ति (Financial Power)– भारतीय संविधान द्वारा वित्तीय क्षेत्र के सम्बन्ध में शक्ति लोकसभा को ही प्रदान की गई है और इस सम्बन्ध में राज्यसभा की स्थिति बहुत गौण है। अनुच्छेद 109 के अनुसार वित्त विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जा सकते हैं, राज्यसभा में नहीं। लोकसभा से पारित होने के बाद वित्त विधेयक राज्यसभा में भेजा जाता है और राज्यसभा के लिए यह आवश्यक है कि उसे वित्त विधेयक की प्राप्ति की तिथि के 14 दिन के अन्दर–अन्दर विधेयक लोकसभा को लौटा देना होगा। राज्यसभा विधेयक में संशोधन के लिए सुझाव दे सकती है, लेकिन इन्हें स्वीकार करना या नहीं करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर करता है। संविधान यह भी व्यवस्था करता है कि यदि वित्त विधेयक प्राप्त होने के बाद 14 दिन के अन्दर राज्यसभा सिफारिशों सहित या सिफारिशों के बिना वित्त विधेयक प्रात्त होने के बाद 14 दिन के अन्दर राज्यसभा लोकसभा को न सिफारिशों सहित या सिफारिशों के बिना वित्त विधेयक लोकसभा को न लौटाए, तो निश्चित तिथि के बाद वह दोनों सदनों से पारित मान लिया जाएगा। वार्षिक बजट और अनुदान सम्बन्धी मांग भी लोकसभा के समक्ष ही रखी जाती हैं और इस प्रकार के समस्त व्यय की स्वीकृति देने का एकाधिकार लोकसभा को ही प्राप्त है।

(3) कार्यपालिका पर नियन्त्रण की शक्ति (Power of Control over Executive)– भारतीय संविधान के द्वारा संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गई है, अतः संविधान के अनुसार संघीय कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमण्डल संसद (व्यवहार में लोकसभा) के प्रति उतरदायी होता है। मन्मिण्डल केवल उसी समय तक अपने पद पर रहता है जब तक कि उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। संसद अनेक प्रकार से कार्यपालिका पर नियंत्रण रख सकती है। संसद के सदस्य मंत्रियों से सरकारी नीति के सम्बन्ध में व सरकार के कार्यों के सम्बन्ध में प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं। तथा उनकी आलोचना कर सकते हैं। संसद सरकारी विधेयक अथवा गजट को स्वीकार करके, मंत्रियों के वेतन में कटौती का प्रस्ताव स्वीकार करके अथवा किसी सरकारी विधेयक में कोई ऐसा संशोधन करके, जिससे सरकार सहमत न हो, अपना विरोध प्रदर्शित कर सकती है। वह कामरोको प्रस्ताव पास करके भी सरकारी नीति की गलतियों को प्रकाश में ला सकती है। अन्तिमरूप से लोकसभा के द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिपरिषद को उसके पद से हटाया जा सकता है।

(4) संविधान संशोधन सम्बन्धी शक्ति (Power of Amending the Constitution) – जहां एक ओर लोकसभा को सामान्य विधेयक पारित करने का अधिकार प्राप्त है, वहां दूसरी ओर संविधान में संशोधन और परिवर्तन

करने का अधिकार भी प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान में संशोधन कार्य संसद के द्वारा ही किया जा सकता है और इसी अनुच्छेद में उस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है, जिसे संविधान के संशोधन में अपनाना होता है। संविधान के संशोधन के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा की स्थिति समान है क्योंकि संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं और उन्हें तभी पारित समझा जाएगा, जबकि उन्हें संसद के दोनों सदन अलग–अलग अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से पारित कर दें। संविधान के अधिकांश प्रावधानों में अकेली संघीय संघ संसद के द्वारा ही परिवर्तन किया जा सकता है केवल कुछ ही प्रावधानों में संशोधन के लिए भारतीय संघ के आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति आवश्यक होती है।

भारतीय संसद की संविधान सम्बन्धी शक्ति पिछले वर्षों बहुत वाद–विवाद का विषय रही है। इस प्रकार के वाद–विवाद का एक प्रमुख बिन्दु यह रहा है कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित करने वाला संवैधानिक संशोधन कर सकती है अथवा नही। 1951 और 1965 में तो सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में संसद की इस शक्ति को स्वीकार किया था लेकिन 27 फरवरी, 1967 को गोलकनाथ विवाद में बहुमत से निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि 'संसद कोई ऐसा संवैधानिक संशोधन नहीं कर सकती, जो मौलिक अधिकारों को छीनता या कम करता हो।' 1971 में 24 वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर गोलकनाथ विवाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए निर्णय को रद्द कर दिया गया। 24 वें संवैधानिक संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई, लेकिन 22 अप्रैल, 1973 के ऐतिहासिक निर्णय में इसे वैध घोषित किया गया, लेकिन इसके साथ ही इस निर्णय में यह कहा गया कि अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार नहीं है कि वह संविधान के मूल स्परूप या उसके आधारभूत ढांचे को ही बदल दे या नष्ट कर दे।

(5) निर्वाचन मण्डल केरूप में कार्य (Function as an Electroal College) – लोकसभा निर्वाचक मण्डल केरूप में भी कार्य करती है। अनुच्छेद 54 के अनुसार लोकसभा के सदस्य राज्यसभा के सदस्यों तथा राज्य विधानसभाओं के सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रपति को निर्वाचित करते हैं। अनुच्छेद 66 के अनुसार लोकसभा और राज्यसभा मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव कराती हैं। लोकसभा के द्वारा सदन के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को निर्वाचित किया जाता है तथा उन्हें पदच्युत भी कर सकती है।

(6) जनता की शिकायतों को निवारण (Redressal of Public Grievances) – लोकसभा के सदस्य प्रतयक्षरूप से जनता द्वारा निर्वाचित होकर आते हैं, अतः उनके द्वारा जनता की शिकायतें, जनता के विचार और भावनाएं सरकार तक पहुंचाई जाती हैं। लोकसभा के सदस्यगण इस बात की चेष्टा करते हैं कि सरकार अपनी नीतियों का निर्माण एवं कार्यों का सम्पादन जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए करे। यदि सैद्धान्तिक अध्ययन के स्थान पर वास्तविक अध्ययन किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि लोकसभा सबसे अधिक प्रमुखरूप में यही कार्य सम्पादित करती है।

(7) विविध कार्य (Miscellaneous Functions): लोकसभा कुछ अन्य कार्य भी करती है जो इस प्रकार हैं:

i. लोकसभा और राज्यसभा मिलकर राष्ट्रपति पर महाभियोग लगा सकती हैं।

ii. उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटाने के लिए राज्यसभा प्रस्ताव पास कर दे, तो इस प्रस्ताव का लोकसभा द्वारा अनुमोदन आवश्यक होता है।

iii. लोकसभा और राज्यसभा मिलकर सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायधिशों के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्तावा पास कर सकती है।

iv. राष्ट्रपति द्वारा संकटकाल की घोषणा को एक महीने के अन्दर–अन्दर संसद से स्वीकार कराना आवश्यक है। अन्यथा इस प्रकार की घोषणा एक महीने बाद स्वयं ही समाप्त मान जी जाती है।

v. यदि राष्ट्रपति सर्वक्षमा देना चाहे तो उसकी स्वीकृति संसद से लेनी आवश्यक है।

लोकसभा की शक्तियों के उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि संसद देश का सर्वोच्च अंग है, तो लोकसभा संसद का सर्वोच्च अंग जनता का प्रतिनिधि सदन होने के कारण, लोकसभा संसद का महत्वपूर्ण, शक्तिशाली एवं प्रभावशाली अंग है। व्यवहार की दृष्टि से यदि लोकसभा को संसद कह दिया जाए, तो अनुचित न होगा।

1.3.7 भारत में संसदीय समितियां (Parliamentary Committees in India)

विश्व की समस्त व्यवस्थपिकाओं के सामने यह समस्या यह है कि कम–से–कम समय में अच्छे से अच्छा व्यवस्थापन किस प्रकार से हो सके? वर्तमान में सभी संसदें व्यवस्थापन कार्य के भार से दबी हुई हैं। वे बढ़ते हुए व्यवस्थापन कार्य को निपटा नहीं पाती हैं और यदि संसद व्यवस्थापन कार्य में शीघ्रता बरते तो कार्य का स्तर स्वाभाविकरूप से निम्न कोटि का होगा। संसद की इन कठिनाइयों के निराकरण के लिए इंग्लैण्ड में समिति–प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। आधनिक विधान तन्त्रों में समितियों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, उनसे कई लाभ हैं – प्रथम, समितियों में सदन की पिछली बैंचों पर बैठने वाले सदस्यों को भी व्यवस्थापन के कार्य में भाग लेने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है। द्वितीय, समितियों में विधेयकों पर निष्पक्षता के साथ सूक्ष्म विचार होता है, ऐसी सूक्ष्मता के साथ विचार करना संसद में कदापि सम्भव नहीं है। तृतीय, समितियों द्वारा सदन का पर्याप्त समय बच जाता है। समितियां एक प्रकार से सदन की आँख, कान, हाथ और मस्तिष्क हैं। चतुर्थ, समितियों के सदस्य अपनी दलगत आस्थाओं के आधार पर मतदान नही करते हैं। पंचम, समितियों के सदस्यगण निर्वाधरूप से और अपनी अन्तरात्मा के अनुसार समस्याओं के मूल्यांकन के आधार पर और दलगत निर्देश की चिन्ता किए बिना मतदान करते हैं हरमन फाइनर के अनुसार, ''हाल में जो समितियों का प्रादुर्भाव हुआ है उसका कारण उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में व्यवस्थापन कार्य की वृद्धि है। आधुनिक सरकार के कर्त्तव्यों की व्यापकता के कारण समितियों में होने वाली कार्यवाही को सदन में किए जाने में उससे अधिक समय लगेगा। समिति प्रणाली का मुख्य उद्देश्य अन्य संस्थाओं व अन्य समयों के लिए कार्य हटाकर लोकसदन के कार्यभार की अधिकता को कम करना है।'' संक्षेप में, समिति–व्यवस्था द्वारा सदन का समय बच जाता है और उसको विशेषज्ञों का परामर्श भी प्राप्त होता है।

कौल तथा शकधर के अनुसार, '' संसद अपना बहुत–सा कार्य समितियों के माध्यम से करती है। इन समितियों को कार्य की कुछ ऐसी विशेष मदों को निपटाने के लिए नियुक्त किया जाता है जिसके लिए विशेषज्ञों द्वारा या ब्यौरेवार विचार करने की आवश्यकता है।'' भारत में समितियों की व्यवस्था मॉण्टेग्यू–चेम्सफार्ड सुधारों के परिणामस्वरूप शुरू हुई थी, लेकिन उन दिनों की समितियों सरकार के निर्णय तथा उसके हस्पक्षेप से स्वतन्त्र नहीं थी। उन्हें कोई शक्तियां या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। नए संविधान के लागू होने के बाद केन्द्रीय विधानमण्डल की स्थिति बिल्कुल बदल गई और समिति की व्यवस्था में भी बहुत अधिक परिवर्तन आया। वस्तुतः अब तो संसदीय समितियां संसद का लघुरूप ही बन गई हैं। संसद के दोनों सदनों में समिति व्यवस्था कुछ मामलों को छोड़कर एक जैसी हैं। न की नियुक्ति, कार्यकाल, कृत्य और कार्यवाही चलाने की प्रक्रिया लगभग एकसमान है। यह प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 118(1) के अन्तर्गत दोनों सदनों द्वारा बनाए गए नियमों के उपबन्धो द्वारा विनियमित होती है।

1.3.8 निष्कर्ष

निष्कर्षतः ये कहा जा सकता है कि भारत में संसदीय प्रणाली स्थापित हुए, 70 वर्षों से अधिक वर्ष हो गए है। भारत में संसदीय प्रणाली ने सफलापूर्वक कार्य किया है तथा लोकतंत्र मजबूत व परिपक्व हुआ है। किन्तु इसमें कुछ दोष उत्पन्न हो गए है, जिनकी वजह से संसदीय प्रणाली क्षीण हुई है। पिछले 30 से 35 वर्षों में संसद की स्थिति में

बहुत परिवर्तन आया है। इसका मुख्य कारण बहुदलीय प्रणाली की वजह से उत्पन्न जोड़–तोड़ की राजनीति का उभरना है। जब तक इसमें सुधान नही होगा, तब तक संसद की स्थिति में सुधान नही होगा।

1.3.9 मुख्य शब्दावली

- सम्प्रभु
- न्यायिक पुनर्विलोकन
- मनोनीत सदस्य
- विधेयक
- पदत्त व्यवस्थापन

1.3.10 अभ्यास हेतू प्रश्न

(1) भारतीय संसद की रचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
(2) भारतीय संसद की भूमिका का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
(3) लोकसभा की रचना, शक्तियों एवं स्थिति का वर्णन कीजिए।
(4) राज्यसभा के संगठन एवं शक्तियों की संक्षेप में समीक्षा करें।
(5) भारतीय में संसद सदस्यों के विशेषाधिकारों का वर्णन कीजिए।

1.3.11 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D. D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D. D. Basu and B.Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C. R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- A. Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J.Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B. L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R. L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N. G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- A. Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W. H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.

- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- A. Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N. C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.

1.4 भारतीय प्रशासन में मंत्रिमण्डल की भूमिका

(Role of Cabinet in Indian Administration)

1.4.1 परिचय

भारत में ससंदात्मक मंत्रिमण्डलात्मक शासन प्रणाली की स्थापना की गई है। सैद्धान्तिकरूप से संविधान द्वारा सभी कार्यपालिका की शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित मानी गई हैं परन्तु यथार्थ में कार्यपालिका की शक्तियाँ मंत्रिपरिषद् में निहित होती हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 के अनुसार, ''राष्ट्रपति को उसके कार्यों को पूरा करने में सहायता तथा परामर्श देने के लिए मंत्रिपरिषद् होगी जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा।'' यह प्रावधान सोच–समझकर रखा गया है तथा संविधान के लचीलेपन को बनाए हुए है, अन्यथा भारतीय संविधान के व्यवहार से प्रकट होता है कि राष्ट्रपति स्वर्णिम शून्य है एवं मंत्रिमण्डल ही सक्रिय कार्यपालिका है। यद्यपि संविधान में मंत्रिमण्डल का उपबंध नहीं है, फिर भी यह भारतीय शासन व्यवस्था का प्राण है। मंत्रिमण्डल ही नीति–निर्णायक निकाय है जो न केवल सम्पूर्ण कार्यपालिका सत्ता का संचालन तथा समन्वय करता है बल्कि विधान–मण्डल में विधि–निर्माण को भी दिशा प्रदान करता है। इस तरह मंत्रिमण्डल की बहु–आयामी भूमिका है। रैम्जैम्योर के अनुसार ''मंत्रिमण्डल राज्य के जहाज का परिचालक यन्त्र है।'' इसी प्रकार मेरियट के शब्दों में ''मंत्रिमण्डल वह धुरी है जिस पर प्रशासन चक्र घूमता है।''

1.4.2 उद्देश्य

- भारत की मंत्रीमण्डल प्रणाली को जानना।
- मंत्रीमण्डल के कार्यों को समझना।
- मंत्रीमण्डल व प्रधानमंत्री के सम्बन्धो को जानना।
- मंत्रीमण्डल का नीति निर्माण के कार्यों का मूल्यांकन को जानना।

1.4.3 भारत की मंत्रिमण्डल प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ

1. राष्ट्रपति का मंत्रिमण्डल से अलग होनाः भारत का राष्ट्रपति केवल नाममात्र का राज्य का अध्यक्ष है। व्यावहारिकरूप से देश का शासन प्रधानमंत्री द्वारा चलाया जाता है जो इस शासन को मंत्रिमण्डल की सहायता से चलाता है। राष्ट्रपति न तो मंत्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेता है और न ही उनकी अध्यक्षता करता है। प्रशासन सम्बन्धी सभी निर्णय मंत्रिमण्डल द्वारा लिए जाते हैं, जिनकी बैठकों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करता है। प्रधानमंत्री ही मंत्रिमण्डल के निर्णयों की जानकारी राष्ट्रपति को देता है। इसलिए राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के कार्यों में शामिल नहीं होता।

2. राजनीतिक एकरूपताः मंत्रिमण्डल का निर्माण करते समय इसके सभी सदस्य प्रायः एक ही राजनीतिक दल से लिए जाते है। क्योंकि मंत्रिमण्डल राजनीतिक सजातीयता के आधार पर अच्छी तरह से कार्य कर सकता है, यदि वे सदस्य एक ही दल के न होकर संयुक्त सरकार केरूप में कार्य कर रहे होते हैं, जैसे की वर्तमान सरकार है, तो वे राष्ट्रीय नीति तथा राजनीतिक समस्याओं के बारे में प्रायः एक मत नही हो पाते हैं और सरकार का कार्य समय जन–कल्याण की बजाय मंत्री कल्याण में ही गुजरता है। इसलिए मंत्रिमण्डल में एकता होनी बहुत जरूरी है।

3. सामूहिक उतरदायित्वः भारतीय मंत्रिमण्डल की एक विशेषता सामूहिक उतरदायित्व भी है । इसका अभिप्रायः यह है कि यदि मंत्रिपरिषद् का कोई सदस्य कार्य करता है तो उसे समस्त मंत्रिमण्डल का कार्य समझा जाता है। किसी भी मंत्री द्वारा रखा गया प्रस्ताव या नीति सारे मंत्रिमण्डल की नीति होती है क्योंकि कोई

भी मंत्री संसद के सामने प्रस्ताव नहीं रख सकता जब तक उसे मंत्रिमण्डल स्वीकृति नहीं देता है। उदाहरण के लिए यदि किसी मंत्री के मन्त्रालय के विषय में कोई असंवैधानिक घटना घट जाए तो उस मंत्री को मंत्रीमण्डल को बनाए रखने के लिए त्याग पत्र देना पड़ता है। जैसे 1962 में चीन के आक्रमण के कारण जब देश की विदेश नीति असफल सिद्ध हुई और हमारे सहस्रों वर्ग मील क्षेत्र पर चीन ने अधिकार कर लिया तो समस्त मंत्रिमण्डल की बजाय केवल सुरक्षामंत्री कृष्ण मैनन ने त्याग पत्र दिया था।

4. गोपनीयताः मंत्रिमण्डल व्यवस्था में गोपनीयता एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसके अनुसार मंत्रिमण्डल की बैठकों में होने वाले विचार विमर्श तथा निर्णयों को गुप्त रखा जाता है। प्रत्येक को अपना पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति के सामने पद एवं गोपनीयता की शपथ इसी आधार पर लेनी पड़ती है और यह सभी मंत्रियों का संवैधानिक कर्त्तव्य है कि वे मंत्रिमण्डल द्वारा किए गए निर्णयों को गुप्त रखें। यदि कोई मंत्री इस बात का उल्लंधन करे तो उसे त्याग पत्र देना पड़ता है जैसे बजट पेश होने से पहले बाहर पता लग जाने के कारण स्वतन्त्रता के पश्चात् पहले मंत्रिमण्डल में से श्री आर.के. सांमुखन (Sh. R.K. Shanmukhan) को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा था।

5. आन्तरिक मंत्रिमण्डलः किसी भी देश में मंत्रिमण्डल एक बहुत महत्वपूर्ण संस्था है, जिसमें निर्णय लेना बहुत कठिन है, क्योंकि इसका आधार बहुत बड़ा है इसलिए जो मंत्री व्यवहार में प्रधानमंत्री के अधिक विश्वासपात्र होते है, वह उन्हीं से अति महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार विमर्श करता है और यही अतिविश्वसनीय मंत्रियों की मण्डली ही आन्तरिक मंत्रिमण्डल का कार्य करती है। इस प्रथा का आरम्भ इंग्लैण्ड में युद्ध मंत्रिमण्डल (War Cabinet) केरूप में लायड जार्ज प्रथम तथा विन्स्टन चर्चिल (Vinston Churchil) द्वारा द्वितीय महायुद्ध में अति विश्वसनीय पाँच मंत्रियों की एक समिति बनाकर किया गया। इसी प्रकार से भारत में भी आरम्भ से ही इस प्रकार का आन्तरिक मंत्रिमण्डल स्थापित होता आ रहा है। पहली आन्तरिक कैबिनेट में पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल तथा मौलाना आजाद शामिल थे। सरदार पटेल की मृत्यु के बाद मौलाना आजाद आयंगर तथा रफी अहमद किदबाई पंडित नेहरू के विश्वासपात्र बने। जब श्रीमती इन्दिारा गाँधी प्रधानमंत्री बनी तो वाई. वी. चौहान, अशोक मेहता तथा दिनेश सिंह उनके विश्वासपात्र थे। बाद में यह स्थिति बदलती रही और साधारणतः गृह, सुरक्षा तथा वित्त विभागों के मंत्रियों को इस संस्था में शामिल समझा जाता है। यही कारण है कि आज अटल बिहारी सरकार में श्री लाल कृष्ण आडवाणी को विश्वासपात्र की वजह से भारत के उपप्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री का पद हासिल है।

6. मंत्रिमण्डल तथा संसद में अनुरूपताः मंत्रिमण्डल तथा संसद में अच्छा सम्बन्ध होना आवश्यक है क्योंकि सभी मंत्री संसद के सदस्य होते हैं और बहुमत दल के प्रभावशाली नेता होते हैं। उनका संसद के सदस्यों तथा अपने दल पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। मंत्रिमण्डल को संवैधानिक तौर पर संसद का सेवक कहा जाता है, परन्तु व्यवहार में यह संसद पर नियन्त्रण करता है। इसलिए मंत्रिमण्डल तााि संसद पूर्ण अनुरूपता से कार्य करते हैं। लॉस्की के अनुसार, ''मंत्रिमण्डल संसद का एक अंग है और इसे संसद से अलग नहीं किया जा सकता।''

7. प्रधानमंत्री की सर्वोच्चताः केन्द्रीय मंत्रिमण्डल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करता है। प्रधानमंत्री का इस पर पूर्ण अधिकार होता है। संविधान में प्रधानमंत्री को समान मंत्रियों में प्रथम माना जाता है। परन्तु दिन–प्रतिदिन उसकी स्थिति अधिक प्रभावशाली होती जा रही है। उसे मंत्रिमण्डलरूपी महराब का केन्द्रीय पत्थर माना जाता है। सरकार का संगठन उस पर निर्भर करता है। दूसरे मंत्रियों की नियुक्ति उसके परामर्श के अनुसार होती है। वह चाहे तो किसी भी मंत्री को अपने मंत्रिमण्डल से हटा सकता है। कोई भी मंत्री प्रधानमंत्री की इच्छा के विरूद्ध कोई काम नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में उसे अपना पद त्यागना भी पड़ सकता है। या उसे, प्रधानमंत्री के विचार को मानना पड़ता है। जैसे 2 मार्च 1975 को मोहन धारिया

को प्रधानमंत्री से श्री जयप्रकाश के आन्दोलन के समबंध में मतभेद होने के कारण अपना पद त्यागना पड़ा था। प्रधानमंत्री ही वास्तविक सरकार है। क्योंकि यदि वे अपना त्यागपत्र दे दे तो सारे मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। वह जिस समय चाहे मंत्रिमण्डल का पुनर्गठन कर सकता है। वह मंत्रिमण्डल का सभापतित्व भी करता है। वह बैठकों को बुलाता है और उनके लिए एजैण्डा तैयार करवाता है। इतना ही नहीं वह राष्ट्रपति का प्रमुख सलाहकार भी होता है।

8. मंत्री दोनों सदनों में बैठ सकते हैंः इंग्लैण्ड में मंत्री केवल अपने ही सदन में ही नहीं बैठ सकते अपितु वे संसद के दोनों सदनों में बैठ सकते हैं। वाद–विवाद में भाग ले सकते हैं। लेकिन वोट का प्रयोग केवल उसी सदन में कर सकते हैं जिसके सदस्य होते हैं।

9. मंत्रिमण्डल की समितियांः भारतीय मंत्रिमण्डल में भिन्न–भिन्न विषयों के सम्बन्ध में कई समितियाँ स्थापित की गई हैं। राजनीतिक कार्यो सम्बन्धी समिति इनमें से सबसे अधिक महतवपूर्ण समिति है। प्रत्येक विषय पर उससे सम्बन्धित समिति पहले निर्णय लेती है और उस पर फिर समस्त मंत्रिमण्डल विचार करता है।

10. मंत्रिमण्डल संसद को भंग करवा सकता हैः जब कभी संसद और कैबिनेट में गतिरोध आ जाए अर्थात् जब कभी संसद कैबिनेट के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर दे अथवा ऐसा प्रस्ताव पास करने जा रही है अथवा जब मंत्रिमण्डल जनता का नएरूप से विश्वास प्राप्त करना चाहे तो मंत्रिमण्डल सामूहिकरूप में अथवा प्रधानमंत्री व्यक्तिगतरूप में राष्ट्रपति को कहकर संसद को भंग करवा सकता है। प्रधानमंत्री द्वारा ऐसा कहे जाने पर राष्ट्रपति संसद को अवश्य भंग कर देता है। संसद को भंग करने की शक्ति के कारण आज कैबिनेट की स्थिति अत्यन्त शक्तिशाली हो गई है।

1.4.4 मंत्रिमण्डल के कार्य

1. नीति निर्माण सम्बन्धित कार्यः मंत्रिमण्डल देश की वास्तविक कार्यपालिका होती है। इसलिए यही राष्ट्रीय नीति का निर्माण करती है। सामाजिक कल्याण के कार्यो के लिए सरकार का कर्त्तव्य निश्चित करना, शान्ति की व्यवस्था बनाए रखने से सम्बन्धित विषयों पर सोच–विचार करना इसी का कार्य क्षेत्र है।

   राष्ट्रीय नीति का निर्माण करते समय मंत्रिमण्डल अपने दल के प्रोग्राम तथा सिद्धान्तों को समक्ष रखता है। व्यावहारिकरूप में राष्ट्रीय नीति कीरूप रेखा बहुमत दल की कार्यकारिणी तैयार करती है। और मंत्रिमण्डल उसे विस्तृतरूप में कार्यान्वित करता है। दलीय कार्यकारणी मंत्रिमण्डल का नीति के सम्बन्ध में निर्देशन करती है। मंत्रिमण्डल इनका उल्लंधन नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मंत्रिमण्डल द्वारा निर्धारित नीति के प्रति सभी मंत्रियों का सहमत होना आवश्यक है। यदि कोई मंत्री इससे सहमत न हो तो उसे त्यागपत्र देना पडता है। मंत्रिमण्डल केवल नीति का निर्माण ही नहीं करता, परन्तु इससे संसद द्वारा इसका समर्थन करना पड़ता है। यदि संसद इसका समर्थन न करे या इसमें संशोधन कर दे तो इस स्थिति में मंत्रिमण्डल को संसद की इच्छानुसार नीति में समर्थन करना पड़ता है।

2. प्रशासकीय कार्यः संविधान द्वारा शासन संचालन की शक्ति राष्ट्रपति में निहित की गई है। परन्तु व्यवहार में इसका प्रयोग मंत्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। यह कार्यपालिका सम्बन्धित शक्तियों के प्रयोग का मुख्य साधन है। और प्रशासनिक कार्य का मुख्य निर्देशक है। देश के प्रशासन को चलाने के लिए उसे विभागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक मंत्री को एक या एक से अधिक विभाग दिये जा सकते है। वह मंत्रिमण्डल के प्रति व्यक्तिगतरूप में तथा संसद के प्रति सामूहिकरूप में उतरदायी होता है। परन्तु उन पर आंतरिक नियन्त्रण मंत्रिपरिषद् का होता है।

3. वैधानिक कार्यः वैधानिक क्षेत्र में मंत्रिमण्डल को विशेष महत्त्व प्राप्त होता है। संसदीय प्रणाली में यद्यपि कानून बनाने का कार्य विधान पालिका का है। फिर भी दिन–प्रतिदिन इस क्षेत्र में भी '' मंत्रिमण्डल का दखल इतना हो गया कि यह बिना किसी बढावे के कहा जा सकता है कि आज–कल विधान निर्माण का कार्य संसद की स्वीकृति से मंत्रिमण्डल ही करता है।'' संसद के अधिवेशन बुलाने का निर्णय मंत्रिमण्डल करता है। यह राष्ट्रपति द्वारा संसद में दिया जाने वाले भाषण भी तैयार करता है। जिसमें आगामी वैधानिक कार्यों का वर्णन होता है। मंत्रिमण्डल हर विषय से सम्बन्धित बिल तैयार करता है और उसे कानून कारूप देने के लिए संसद में पेश करता है। परन्तु अधिकांश बिल मंत्रिमण्डल द्वारा ही पेश किये जाते हैं। और संसद का अधिकांश समय इन बिलों पर सोच–विचार करने और उन्हें स्वीकार करने में ही लग जाता है। मंत्री बिल के प्रत्येक पहलू प्रकाश डालते है। और संसद सदस्य के द्वारा पूछे गये सवालों का उत्तर देते है। मंत्रिमण्डल को बहुमत दल का समर्थन प्राप्त होने के कारण सभी बिल स्वीकृत हो जाते हैं। जिस समय संसद का अधिवेशन न हो रहा हो मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति के नाम पर अध्यादेश जारी करती है। जिससे संसद द्वारा पास किए गए कानूनों की भांति लागू किया जाता है। मंत्रिपरिषद् के पास समय कम और काम अधिक होने के कारण कानून बनाते समय वे इस पर विस्तृतरूप से विचार नहीं कर सकते। मंत्रिपरिषद् इन्हें केवल ढाँचे केरूप में पास करती है। तथा मंत्रिमण्डल को इसमें विस्तार करने का अधिकार देती है। जो समयानुसार इसका प्रयोग करता है।

4. विदेश नीति बनाना तथा अन्य देशों मे सम्बन्धो का संचालनः चूंकि आधुनिक युग अन्तराष्ट्रीयवाद का युग है। और कोई भी देश एक व्यक्ति की तरह आत्म सम्पन्न नहीं है। उसे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यक्ति की तरह ही राज्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इसलिए विदेश नीति बनाना अति महत्वपूर्ण कार्य है। तथा इसके लिए मंत्रिपरिषद् सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करती है। जैसे भारत में गुट निरपेक्षता की नीति अपनाई है। नीति का निर्माण करने के पश्चात् मंत्रिमण्डल इसे वास्तविकरूप देने के लिए पग उठाता हैं। तथा इसका संचालन करता है। दूसरे देशो से सन्धियाँ तथा समझौते राष्ट्रपति के नाम पर मंत्रियों द्वारा ही किऐ जाते हैं। मंत्रिपरिषद् विदेशो में भेजे जाने वाले राजदूतों को चुनती है तथा उसके परामर्श पर राष्ट्रपति उसकी नियुक्ति करता है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति युद्ध एवं युद्ध विराम की घोषणा नहीं कर सकता। परन्तु व्यवहार में ऐसी घोषणा मंत्रिमण्डल के निर्णय अनुसार की जाती है और राष्ट्रपति केवल इसे औपचारिकरूप देता है।

5. वित्तीय कार्यः मंत्रिमण्डल का राष्ट्र की वित्त–व्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण होता है। यह देश की कुल आय और व्यय का उत्तरदायी होता है। वह देश का वार्षिक बजट तैयार करती है। तथा संसद की स्वीकृति के बाद वित्त मंत्री द्वारा संसद में पेश करवाती है। नये प्रकार के कर लगाने के सुझाव रखती है। जिस समय बजट संसद के समक्ष रखा जाता है तो प्रत्येक मंत्री अपने विभाग के लिए उत्तरदायी होता है। यदि देश में संकट उत्पन्न हो जाए तो मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति को वित्तीय संकटकाल की घोषणा करने का परामर्श देता है। यह राष्ट्रपति को वित्त आयोग गठित करने का सुझाव देता है।

6. विभागों के कार्यों में समन्वय करनाः वह सभी विभागों की पारस्परिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करती है। तथा उनके कार्यों का समन्वय करती है। विभागों के पारस्परिक झगड़े मंत्रिमण्डल के समक्ष रखे जाते हैं। तथा उनका निर्णय करता है। यह विभिन्न विभागों का उतरदायित्व निश्चित करता है। तथा उनके कार्यों का निरीक्षण करता है।

7. नियुक्तियों पर नियन्त्रणः मंत्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति राज्यों के गवर्नरों, राजदूत, अर्टोनी जनरल, नियन्त्रण व महालेखा परीक्षक संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों, वित्तीय आयोग की नियुक्ति करता है। यहाँ तक कि सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी

राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के परामर्श पर करता है। इसके अतिरिक्त लोक सेवाओं के कुछ उच्च पदों पर नियुक्त भी मंत्रिमण्डल द्वारा की जाती है। जैसे केन्द्रीय मंत्रालयों के सचिवालयों के उपसचिव तथा उससे उच्च पदों पर नियुक्तियाँ मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति द्वारा केन्द्रीय तथा अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारियों को पदोन्नत करके की जाती है।

8. राष्ट्रपति को परामर्श देती हैः मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति का प्रमुख सलाहकार होता है। वह उसे हर समय तथा हर सहायक सलाह देता है। जिसे राष्ट्रपति को मानना ही पड़ता है।

9. अन्य कार्यः भारतीय मंत्रिमण्डल को कुछ ऐसे अधिकार भी प्राप्त हैं जो ब्रिटिश मंत्रिमण्डल को प्राप्त नहीं है। उदाहरण संसद के विशान्तिकाल में राष्ट्रपति के प्राधिकार के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल को विधि निर्माण का अधिकार है। सकटकालीन स्थिति में राष्ट्रपति के अधिकार व्यावहारिकरूप में मंत्रिमण्डल के ही अधिकार हैं। जिसके अन्तर्गत वह मौलिक अधिकारों को निलम्बित कर सकता है। तथा इसके द्वारा अन्य आवश्यक कदम उठाए जा सकते है।

1.4.5 निष्कर्ष

कैबिनेट को साधारण भाषा में मंत्रिमण्डल भी कहा जाता है। लेकिन ये दोनों अलग है। मंत्रिमण्डल में कई प्रकार के मंत्री शामिल होते है। कैबिनेट द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किए जाते है, जिनमें सरकार की नीतियों को संसद में प्रस्तुत करना, सरकार की नीतियों को लागू करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, तथा सभी विभागों और मंत्रालयों के बीच समन्वय स्थापित करते है। मंत्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्वांत पर कार्य करती है। इस सिद्वांत के अंतर्गत सभी मंत्री अपने कार्य के प्रति एंव सरकार के प्रति सामूहिकरूप से उतरदायी होते है।

1.4.6 मुख्य शब्दावली

- मंत्रिमण्डलात्मक
- गोपतीयता
- अविश्वास प्रस्ताव
- अधिवेशन
- अध्यादेश

1.4.7 अभ्यास हेतू प्रश्न

1) मंत्रिमण्डल से आप क्या समझते है? इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो।

2) मंत्रिमण्डल के कार्यो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

3) क्या भारत के प्रशासन में मंत्रिमण्डल की अहम् भूमिका है? वर्णन कीजिए।

1.4.8 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D. D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.

- D. D. Basu and B.Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C. R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- A. Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J.Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B. L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R. L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N. G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- A. Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W. H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- A. Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N. C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.

1.5 प्रधानमंत्री

(Prime Minister)

1.5.1 परिचय

भारत एक सार्वभौमिक प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को राष्ट्राध्यक्ष का दर्जा दिया गया है जबकि प्रधानमंत्री वास्तविक शासनाध्यक्ष बनाया गया है। सैद्धान्तिकरूप से संविधान द्वारा सभी शाक्तियां राष्ट्रपति में निहित की गई है, परन्तु वास्तव में मंत्रिपरिषद् ही सरकार की सभी शक्तियों का प्रयोग करती है अतः मन्त्रिमण्डल वह धुरी है जिस पर शासन चक्र घूमता है, और प्रधानमंत्री इस मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष होता है। इसलिए प्रधानमंत्री को राज्यरूपी जहाज का चालक कहा जाता है। वह सम्पूर्ण शासन की आधारशिला है। व्यवहार में मंत्रिपरिषद् के अन्दर तथा बाहर सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति प्रधानमंत्री ही है। संविधान के अनुच्छेद 74 में उल्लेख है कि ''राष्ट्रपति को उसके कार्यों के सम्पादन में सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होगा।'' इसलिए भारतीय प्रधानमंत्री की सरकार तथा प्रशासन में अहम् भूमिका है।

1.5.2 उद्देश्य

- प्रधानमंत्री की नियुक्ति के बारे मे जानना।
- प्रधानमंत्री के कार्यो को समझना
- प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति की शक्तियों का मूलयांकन करना।
- प्रधानमंत्री की शक्तियों को समझना।

1.5.3 प्रधानमंत्री की नियुक्ति

संवैधानिक प्रावधान के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। जब देश में आम चुनावों द्वारा लोकसभा का गठन होता है तो लोकसभा में जिस राजनैतिक दल का बहुमत होता है उस दल के मुखिया को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति हेतु बुलाया जाता है और प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई जाती है। इस स्थिति में राष्ट्रपति को विवके का प्रयोग करने का अवसर नहीं रहता हैं। राष्ट्रपति अपने विवके व सूझबूझ का उस स्थिति में प्रयोग करता है जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पश्ट बहुमत नहीं मिलता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है, जो केन्द्र में स्थाई सरकार बना सके। उदाहरण के लिए सन् 1989 में जब लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत नही मिला तो राष्ट्रीय मोर्चे के नेता श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था फिर 1991 में श्री पामुलपति वेंकट नरसिम्हा राव को, 1998 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी को और इसी प्रकार सन् 1999 में राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन, जिसमें 23 राजनीतिक दल शामिल थे, को लोकसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और गठबन्धन द्वारा दोबारा श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में केन्द्र में मिली–जुली सरकार का गठन किया गया।

प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्ति के लिए संविधान में कोई अलग योग्यता नहीं रखी गई है। वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता हैं तथा यदि नियुक्ति के समय वह संसद का सदस्य नहीं है तो छः महीने के अन्दर उसे सदस्यता ग्रहण करनी आवश्यक है, अन्यथा उस पद को रिक्त समझा जाएगा। इसलिए उसमें वे सभी योग्यताएं होनी चाहिए जो भारत के संविधान में लोकसभा का सदस्य बनने के लिए निर्धारित की गई हैं।

संविधान की धारा 75 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है, मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यन्त अपने पद पर बने रहेंगे। (The Ministers shall hold office during the pleasure of the President.) लेकिन व्यवहार में स्थिति

बिल्कुल भिन्न है। प्रधानमंत्री 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है, लेकिन जब तक उसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त है, वह अपने पद पर बना रहेगा। अभिप्राय यह हुआ कि प्रधानमंत्री का कार्यकाल निश्चित नहीं है। लोकसभा के अविश्वास के प्रस्ताव के द्वारा, प्रधानमंत्री को हटाया जा सकता है। 10 जुलाई, 1979 को लोकसभा के विरोधी दल के नेता यशवन्त राव चौहान ने प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के विरुद्ध अविश्वास–प्रस्ताव पेश किया। अविश्वास–प्रस्ताव पर मतदान होने से पूर्व ही प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने 15 जुलाई, 1979 को त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि जनता पार्टी के काफी सदस्यों ने जनता पार्टी को छोड़ दिया था। यह पहला अवसर था जब किसी प्रधानमंत्री को अविश्वास–प्रस्ताव के कारण त्यागपत्र देना पड़ा। 39वें संशोधन के द्वारा, जिसे अनुच्छेद 329। को संविधान में अंकित किया गया था, उस अनुच्छेद को 44वें संशोधन द्वारा संविधान में से निकाल दिया गया है। अब प्रधानमंत्री के चुनाव–सम्बन्धी विवादों की सुनवाई उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार संसद के किसी अन्य सदस्य के विरुद्ध धारा 329 के अधीन होती है। 17 अप्रैल, 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार द्वारा लोकसभा में विश्वास मत खो देने के पश्चात् अपना त्यागपत्र दे दिया गया था। अतः प्रधानमंत्री का कार्यकाल निश्चित नहीं है।

1.5.4 प्रधानमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ

इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री के बारे में ग्लैडस्टोन ने कहा था, ''कही भी इतने छोटे पद की इतनी बड़ी छाया नही हैं।'' (Nowhere has so small a substance cast so large shadow.) इसी प्रकार से श्री ग्रीब्स ने भी कहा था, ''उसकी शक्तियाँ एक तानाशाह जैसी दिखाई पड़ती हैं।''(His formal powers resemble closely to those of an autocrat.) यदि इन दोनों उक्तियों को भारत के प्रधानमंत्री पर लागू किया जाए तो बिल्कुल ठीक बैठती हैं। भारत में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसको इतनी शक्तियाँ प्राप्त हों। प्रधानमंत्री की शक्तियों और कार्यों का विवरण निम्नलिखित है–

1. यह मत्रिपरिषद् का निर्माण करता हैः बहुमत दल का नेता होने के कारण राष्ट्रपति उसे प्रधानमंत्री नियुक्त करता है तथा उसे सरकार निर्माण करने के लिए निम्मन्त्रित करता है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री द्वारा सुझाए गए व्यक्तियों को ही मन्त्री नियुक्त करता है। मंन्त्रियों का चुनाव पूर्णतया प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर रहता है। यह ठीक है कि प्रधानमंत्री अपने दल के प्रमुख नेताओं को मन्त्री बनाने के अधिकार की उल्लंघना कम ही करता है, परन्तु अगर वह चाहे तो दल के प्रमुख नेताओं को किसी–न–किसी बहाने मन्त्रिपरिषद् की सदस्यता से वंचित कर सकता है। श्री मोरारजी देसाई ने त्यागपत्र प्रधानमंत्री की इच्छा पर ही दिया था चाहे बाहरीरूप में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दरा गाँधी ने ऐसी इच्छा प्रकट नहीं की थी।
2. विभागों का बटवाराः न केवल प्रधानमंत्री मन्त्रियों को नियुक्त करता है, अपितु वह उनमें विभागों का बंटवारा भी करता है। यह निर्णय वही करता है कि कौन–सा मन्त्री किस विभाग का अध्यक्ष होगा तथा कौन–सा मन्त्री कैबिनेट मन्त्री होगा तथा कौन–सा मन्त्री राज्य मन्त्री अथवा उपमन्त्री। विभाग बांटने की शक्ति को प्रधानमंत्री की स्वेच्छाधारी शक्ति कहा जा सकता है। यह ठीक है कि उसे पार्टी के नेताओं को सतुष्ट रखना होता है तथा देश के प्रत्येक क्षेत्र को प्रतिनिधित्व देना होता है, परन्तु एक दृढ़ तथा लोकप्रिय नेता प्रधानमंत्री केरूप में अपनी इच्छानुसार मंत्रीपरिषद् कोरूप दे सकता है।
3. मन्त्रियों को हटाने की शक्तिः सैद्धान्तिकरूप में मन्त्री, राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यन्त पद पर बने रहते हैं, परन्तु राष्ट्रपति मन्त्रियों को पद से अलग करने का निर्णय प्रधानमंत्री के कहने पर ही करता है। अतः ''व्यवहार में मन्त्री प्रधानमंत्री के प्रसाद–पर्यन्त अपने पद पर रहते है।'' (Theoratically the Ministers hold office during the pleasure of the President but in practice, it is the pleasure of the Prime Minister during which they remain in office.) अगर प्रधानमंत्री की दृष्टि में कोई मन्त्री कुशलता से कार्य नहीं कर रहा अथवा वह मन्त्री प्रधानमंत्री के किसी निर्णय से सहमत नहीं है तो प्रधानमंत्री उस व्यक्ति को त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है, जो कि उस मन्त्री को देना ही होता है, अथवा प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को कहकर उसे

पदच्युत करवा सकता है। वास्तव में इस बात की नौबत नहीं आती। जब भी किसी मन्त्री को यह पता चल जाता है कि प्रधानमंत्री उसे मन्त्रिपरिषद् में नही रखना चाहता तो वह स्वयं त्यागपत्र दे देता है।

सन् 1995 में हवाला काण्ड सामने आया। उसमें राव सरकार के कई मन्त्री लिप्त थे। तत्काल प्रधानमंत्री राव ने उन सभी मंन्त्रियों को मन्त्रिमण्डल से हटा दिया जो हवाला काण्ड में संलिप्त थे। इसी प्रकार पूर्व प्रधानमंत्री श्री देवगौड़ा ने श्री तसलीमूद्दीन को मन्त्रिपरिषद् से हटाया, क्योंकि उनके विरुद्ध असामाजिक तत्वों से सम्बन्ध का आरोप था।

4. लोकसभा का नेतृत्व करता हैः इंग्लैण्ड की भांति भारत का प्रधानमंत्री लोकसभा का नेतृत्व करता है। वह सदन में सरकार की नीति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घोषणाएं करता है और प्रश्नों के उत्तर देता है। वह लोकसभा में वाद–विवाद को आरम्भ करता है तथा मन्त्रियों की सदन में आलोचना से सुरक्षा करता है। वह अपने दल के सदस्यों को सचेतक (Whips) द्वारा आदेश तथा निर्देश भेजता है तथा उन पर निगरानी और नियन्त्रण रखता है। सदन के वैधानिक कार्यों पर उसका विशेष प्रभाव होता है। वह स्पीकर के साथ मिलकर सदन का कार्य करता है तथा सदन में अनुशासन बनाए रखने के लिए स्पीकर की सहायता करता है।
5. राष्ट्रपति तथा मन्त्रिमण्डल में कड़ी का काम करता हैः प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तथा मन्त्रिमण्डल के मध्य कड़ी का काम करता है। वह राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के द्वारा किए गए निर्णय की सूचना देता है तथा राष्ट्रपति के विचार मन्त्रिमण्डल के समक्ष रखता है। राष्ट्रपति उसे किसी एक मन्त्री द्वारा व्यक्तिगतरूप से किए गए निर्णयों पर मन्त्रिमण्डल का निर्णय लेने के लिए कह सकता है। वह राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। यदि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से सहमत न हो तो वो उसे परामर्श मानना पड़ता है।
6. कैबिनेट का नेतृत्वः प्रधानमंत्री कैबिनेट का नेता होता है। वह कैबिनेट की बैठकों की प्रधानता करता है। राष्ट्रपति कैबिनेट की कार्यवाई में भाग नहीं लेता। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में ही कैबिनेट सभी कार्य करता है। वह कैबिनेट में विभन्न विषयों पर बहस संचालित करता है तथा अगर उचित समझे तो उन पर मतदान करवाता है। अधिकतर किसी नीति पर सहमति तभी होती है, जब उस नीति को प्रधानमंत्री की सहमति प्राप्त हो जाए। संक्षेप में हम कह सकते है कि कैबिनेट की सम्पूर्ण कार्यवाही प्रधानमंत्री की देखरेख में होती है।
7. विभिन्न विभागों में एक कड़ीः कैबिनेट का प्रधान होने के नाते वह एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य करता है। अतः विभिन्न विभागों में उत्पन्न होने वाली आपसी समस्याओं, झगड़ो तथा मतभेदों को इस तरह सुलझाते है, जिससे प्रशासनिक कुशलता बनी रहे। कुशल प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि सरकार के विभिन्न विभागों में आपसी सहयोग तथा साधनों का समन्वय हो। ऐसे उद्देश्य के लिए प्रधानमंत्री विभिन्न विभागों में कड़ी की तरह कार्य करता है। वह अन्तर्विभागीय मतभेदों को दूर करने के लिए मध्यस्थ तथा निर्णायक केरूप में भी कार्य करता है।
8. राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकारः प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार है। राष्ट्रपति प्रत्येक मामले पर प्रधानमंत्री की सलाह लेता है और उसके द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करता है, वह उसकी सलाह को मानने के लिए बाध्य है। राष्ट्रपति को प्रशासन के बारे में किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त करनी हो तो वह किसी अन्य मन्त्री से सीधा बात ने करके प्रधानमंत्री से ही बात करता है तथा सूचना प्राप्त करता है।
9. दल का नेताः प्रधानमंत्री अपने दल का नेता होता है। दल की नीतियों तथा कार्यक्रम को तैयार करने में उसका मुख्य हाथ होता है। आम चुनाव के समय दल के उम्मीदवारों को खड़ा कर उन्हें टिकटें देना तथा उन्हें चुनाव जीतवाने में वह बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उस समय वह समस्त देश का दौरा करके जनता से उसके दल के उम्मीदवारों के पक्ष में मत देने की अपील करता है।

10. सदन के नेता केरूप मेंः दल का नेता होने के साथ–साथ वह सदन का भी नेता होता है। प्रधानमंत्री ही संसद के अधिवेशन बुलाने की तिथि निश्चित करता है। लोकसभा की कार्यवाही चलाने का उत्तरदायित्व उसी पर होता है। कौन–सा बिल कब प्रस्तुत किया जाएगा और कौन–सा बाद में, किस बिल पर कितना वाद–विवाद होगा, यदि विरोधी दल बिल पेश करना चाहता है तो उस पर वाद–विवाद कब होगा, इन सब बातों का निर्णय स्पीकर, प्रधानमंत्री और विपक्ष के नेता से सलाह करके करता है। प्रधानमंत्री ही सदन में महत्वपूर्ण नीतियों की घोषणा करता है। प्रधानमंत्री ही सरकार की नीतियों को सदन में पेश करता है यदि विरोधी दल द्वारा इन नीतियों की आलोचना की जाती है तो वह उन आलोचनाओं का उत्तर देता है। विशेषकर प्रधानमंत्री की महत्ता तब और भी बढ़ जाती है, ज बवह अविश्वास से प्रस्ताव के नाजुक समय में अपने दल की रक्षा करता है।

11. प्रधानमंत्री राष्ट्र के नेता केरूप मेंः प्रधानमंत्री राष्ट्र का नेता है। सारा राष्ट्र प्रधानमंत्री की ओर अच्छे प्रशासन व पथ–प्रदर्शन के लिए निगाहें लगाए हुए होता है। साधारणतः चुनाव भी प्रधानमंत्री के नाम पर लड़े जाते हैं; जैसे सन् 1980 में इन्दिरा गाँधी ने चुनाव जीता, ऐसे ही सन् 1989 में श्री वी.पी. सिंह ने जनता को विश्वास दिलाया था कि राष्ट्र को साफ सुथरी सरकार देंगे। इसी प्रकार सन् 1998 में लोकसभा के चुनाव में यह नारा दिया गया, 'अब की बारी अटल बिहारी' अर्थात् मतदाता दल को महत्व देते ही हैं, लेकिन साथ में इसके नेता को अधिक महत्व देते हैं। प्रधानमंत्री का राष्ट्र के नेता केरूप में महत्व संकटकालीन समय में और भी बढ़ जाता है। सारा राष्ट्र देश के प्रधानमंत्री की और देखता है और जनता उसके विचारों को बड़े ध्यान से सुनती है।

12. लोकसभा को भंग कराने का अधिकारः इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह कॉमन्स सभा को भंग कर दे और इस मामले में उसे मन्त्रिमण्डल की सलाह लेने की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार का अधिकार भारत के प्रधानमंत्री को दिया गया है। वह राष्ट्रपति को सलाह देकर लोकसभा को भंग करवा सकता है। जैसा कि सन् 1977 में राष्ट्रपति फखरुद्दीन ने प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी की सलाह पर लोकसभा को भंग किया था। इसी प्रकार चौ० चरण सिंह की सलाह पर राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने भी लोकसभा को भंग किया था। सन् 1997 में पूर्व प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल के परामर्श पर भी राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया था और इसके पश्चात् नए चुनाव करवाए गए। इसी प्रकार सन् 1999 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के मन्त्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया। राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री की सलाह को मानना पड़ेगा ऐसा प्रावधान संविधान की धारा 42 में किया गया है।

13. प्रधानमंत्री और विदेश–नितिः प्रधानमंत्री भले ही विदेशी विभाग अपने पास न रखता हो, परन्तु उसे विदेश मन्त्रालय से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना पड़ता है। वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की नीति का स्पष्टीकरण करता है। विदेश–नीति के सभी महत्वपूर्ण विषय उसी के द्वारा निश्चित किए जाते हैं। विदेशी राज्यों में प्रधानमंत्री की विचारधारा एवं नीतियाँ मान्य होती हैं। उसी के सुझावों पर किसी राज्य को मान्यता दी जाती है, राजदूत नियुक्त किए जाते हैं और आवश्यकता पड़ने कर उन्हें वापिस बुलाया जाता है। राज्यों के अध्यक्षों की बैठकों में या सम्मेलनों में वह भारत का प्रतिनिधित्व करता है। शान्ति, युद्ध और सन्धि के क्षेत्र में प्रधानमंत्री की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी देश के प्रतिनिधि केरूप में प्रधानमंत्री ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

14. प्रधानमंत्री राष्ट्रमण्डल के देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करता हैः भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य है, जिस कारण राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ मैत्री के सम्बन्ध स्थापित करना प्रधानमंत्री का कार्य है। प्रधानमंत्री राष्ट्रमण्डल की बैठकों में भाग लेता है।

15. प्रधानमंत्री और सुरक्षाः राष्ट्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। इसका कारण उसका रक्षा विभाग पर पूरा नियन्त्रण होता है। राष्ट्र की सुरक्षा और विदेश–नीति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और वह दोनों ही विभागों के कार्यों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। देश की हार–जीत उसकी हार–जीत है। उदाहरण के लिए सन् 1965 के युद्ध में पाकिस्तान पर विजय का श्रेय श्री लाल बहादुर शास्त्री को मिला। प्रधानमंत्री राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कैबिनेट से सलाह लेकर यह निर्णय करता है कि किस राष्ट्र से सन्धि की जाए, किस राष्ट्र से किस प्रकार के अस्त्र लिए जाएं और संकट के समय किस राष्ट्र की सहायता ली जाए।

16. प्रधानमंत्री का अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रणः प्रधानमंत्री का देश की अर्थव्यवस्था पर पूरा नियन्त्रण होता है। अर्थव्यवस्था की विफलता का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। जुलाई, 1969 से लेकर जून, 1970 तक वित्त विभाग श्रीमति इन्दिरा गांधी के पास ही था। बजट का निर्माण वित्त मन्त्री प्रधानमंत्री की सलाह से ही करता है। योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री ही होता है।

17. सरकार का मुख्य प्रवक्ताः संसद तथा जनता के सामने मन्त्रिमण्डल की नीति और निर्णयों की घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है वह सभी प्रशासकीय विभागों की जानकारी रखता है और जब कभी कोई मन्त्री संकट में हो तो उसकी सहायता आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री ही होता है।

18. प्रधानमंत्री की आपातकालीन शक्तियांः भारतीय संविधान के अन्तर्गत धारा 352, 356, 360 के द्वारा भारत के राष्ट्रपति को तीन प्रकार की संकटकालीन शक्तियाँ दी गई हैं, लेकिन वास्तविकरूप में राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही करता है, जैस अक्तूबर, 1962 में चीन के आक्रमण के समय एवं 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान के आक्रमण के समय तथा 26 जून, 1975 को आन्तरिक व्यवस्था के खराब होने पर अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की सलाह से ही आपात्कालीन स्थिति की घोषणा की थी। इसी प्रकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में राष्ट्रपति–शासन भी प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार लगाया जात है 44वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति, अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकाल की घोषणा तभी कर सकता है, यदि मन्त्रिमण्डल संकटकाल की घोषणा करने की लिखित सहाह दे। अप्रेल, 1977 को कार्यवाहक राष्ट्रपति श्री बी० डी० जती ने प्रधानमंत्री की सलाह पर नौ विधानसभाओं का भंग किया।

प्रधानमंत्री का व्यक्तित्वः किसी भी प्रधानमंत्री की स्थिति और भूमिका उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। महान् व्यक्तित्व का प्रधानमंत्री एक प्रभावशाली प्रधानमंत्री होता है, जिसकी भूमिका का प्रभाव शासन, दल और जनता पर पड़ता है। भारत में नेहरू, इन्दिरा गाँधी तथा राजीव गाँधी ऐसे ही प्रधानमंत्री थे। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी भी ऐसे ही प्रधानमंत्री हैं। दुर्बल व्यक्तित्व के प्रधानमंत्री का राष्ट्र की गतिविधियों पर नियन्त्रण कम रहता है और वह कोई विशिष्ट छाप नहीं छोड़ पाता।

प्रधानमंत्री की स्थितिः प्रधानमंत्री की शक्तियाँ एवं कार्यों का अध्ययन करने से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि हमारी सवैधानिक व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति केन्द्रीय धुरी के समान है। श्री नेहरू प्रधानमंत्री पद को 'सरकार की मुख्य कड़ी' की उपमा दी। 1956 ई० में श्री नेहरू ने कहा, ''मैं भारत का प्रधानमंत्री हूँ तथा प्रधानमंत्री सर्वश्रेष्ठ मन्त्री होता है। वह सरकार की नीति निर्धारित कर सकता है।'' (I am the Prime Minister of India and the Prime Minister is Prime Minister. He can lay down the policy of the Government.) संवैधानिक तन्त्र में प्रधानमंत्री की स्थिति इतनी महत्वपूर्ण हो गई है कि कुछ लेखक तो यहाँ तक कह देते हैं, ''भारत में कैबिनेट प्रणाली के स्थान पर अब प्रधानमंत्रीय सरकार की स्थापना की गई है।'' (The Prime Ministerial form of Government has replaced cabinet system of Government.)

वास्तव में प्रधानमंत्री को संविधान के अधीन विशाल शक्तियों का स्वामी बनाया गया है तथा संवैधानिक ढांचे में उसकी स्थिति सबसे महत्वपूर्ण है। लास्की के अनुसार, ''वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री के समान मन्त्रिपरिषद् के संगठन, जीवन और मृत्यु के लिए केन्द्रीय शक्ति है। प्रत्येक मन्त्रिपरिषद् कारूप तथा आकार उसकी नीति और निर्णय पर निर्भर होता है।'' उसे सूर्य की उपमा दी जा सकती है, जिसके इर्द–गिर्द अन्य नक्षत्र चक्कर काटते हैं।

प्रधानमंत्री की तानाशाहीः वास्तव में भारतीय प्रधानमंत्री के हाथ में अत्यन्त विशाल शक्तियां केन्द्रित हैं। उसकी इतनी अधिक शक्तियों को देखते हुए कुछ विचारकों ने यह मत प्रकट किया है कि प्रधानमंत्री तानाशाह बन सकता है। श्री के० टी० शाह के शब्दों में, ''संविधान प्रधानमंत्री को इतनी अधिक शक्तियाँ तथा स्थिति प्रदान करता है कि हर समय इस बात का भय बना रहता है कि यदि प्रधानमंत्री चाहे तो वह तानाशाह बन सकता है।'' (The Constitution concentrates so much powers and influence in the hands of the Prime Minister that there is every danger to apprehend that he may become a dictator if he chooses to do so.) इसी प्रकार श्री एन० वी० गाडगिल ने भी कहा है, ''प्रधानमंत्री को इतनी अधिक शक्तियां सौंपी गई हैं कि यदि वह स्वभाव से लोकतन्त्रात्मक विचारों का न हो तो उसके तानाशाह बनने की सम्भावना हो सकती है।'' (The Prime Minister is invested with formidable power and influence and unless he be a genuine democrate by nature, he is very likely to become a dictator.)

परन्तु यह बात हम निश्चितरूप से कह सकते हैं कि भारतीय प्रधानमंत्री के पास विशाल शक्तियाँ तो हैं, परन्तु वह तानाशाह नहीं बन सकता। जो व्यक्ति प्रधानमंत्री के तानाशाह बन जाने की सम्भावना पर बल देते हैं, वे निश्चय ही लोकतन्त्रीय व्यवस्था में दृढ़ विश्वास नहीं रखते। लोकतन्त्रीय व्यवस्था में किसी भी अधिकारी के तानाशाह बन जाने की कल्पना करना ठीक नहीं। इतिहास इस बात का गवाह है कि भारतीय प्रधानमंत्री ने अपने पद की शक्तियों का दृढ़रूप से प्रयोग तो किया, परन्तु उन्होंने कभी भी तानाशाह बनने का प्रयत्न नहीं किया।

प्रधानमंत्री की स्थिति वास्तव में उसके व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रधानमंत्री का पद बड़ा शक्तिशाली होता है। उसकी स्थिति बड़ी महान् है, परन्तु इतना होते हुए भी वह तानाशाह नहीं बन सकतां उसकी स्थिति सही अर्थों में उसकी शक्तियों के कारण नहीं, बल्कि यह उसके व्यक्तित्व (Individual Personality) पर निर्भर करती है।

देश के वास्तविक मुखिया केरूप में कार्य करते हुए किसी व्यक्ति के तानाशाह बन जाने की कल्पना करना ठीक नहीं। प्रधानमंत्री के पास विशाल शक्तियाँ हैं, परन्तु वह तानाशाह नहीं बन सकता। लोकतन्त्रीय व्यवस्था में अधिकारी होते हुए प्रधानमंत्री ऐसा बनने की सोच भी नहीं सकता, क्योंकि उसे यह पता होता है कि लोकतन्त्रीय वातावरण में तानाशाही स्थापित करने की सोचना आत्महत्या करने के समान है।

निश्चय ही प्रधानमंत्री का पद हमारी सवैधानिक व्यवस्था में सबसे अधिक शक्तिशाली है, परन्तु इसके साथ यह भी याद रखना चाहिए कि इस पद को, जो भी व्यक्ति प्राप्त करता है, उसे जनता के सामने लोकतन्त्र में दृढ़ विश्वास की परीक्षा में खरा उतरना होता है। जनता के लिए कल्याणकारी कार्य करके तथा चुनाव में जनता के सम्मुख उपस्थित होकर उसने जनता के विश्वास को प्राप्त किया होता है। जनता के विश्वास को सदा बनाए रखने का उत्तरदायित्व वह समझता है तथा उसका सदा यह प्रयत्न रहता है कि यह ऐसे ढंग से कार्य करे जिससे उसे जनता का विश्वास प्राप्त रहे। दूसरे शब्दों में, वह सदैव जनमत के अनुसार कार्य करता है।

प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व सदैव कड़ी निगरानी में रहता है। उसकी अपनी पार्टी के प्रतिद्वन्द्वी इस अवसर की खोज में रहते है कि कब उन्हें यह पद प्राप्त हो। प्रधानमंत्री सदैव एक तरफ तो यह प्रयत्न करता है कि उसके दल के विभिन्न गुटों के नेता संतुष्ट रहें, तो दूसरी ओर अपनी स्थिति को बनाए रखने में लगा रहता है। विरोधी पक्ष भी अधिक–से–अधिक प्रधानमंत्री के कार्यों तथा व्यक्तित्व में त्रूटियाँ खोजने के चक्कर में लगे रहते हैं, क्योंकि उन्हें पता

है कि उनको सफलता प्रधानमंत्री की असफलता पर ही प्राप्त हो सकती हैं प्रधानमंत्री की आलोचना करने का अर्थ है समस्त सरकार की आलोचना करना। प्रधानमंत्री भी सदैव विरोधी पक्ष से चौकन्ना रहता है। एक तरफ तो वह विरोधी पक्ष को यह विश्वास दिलाने के लिए तत्पर है तथा दूसरी ओर वह सदैव विरोधी पक्ष द्वारा की गई सरकार की प्रत्येक आलोचना का जवाब भी देता है। जेनिंग्ज के शब्दों में, ''प्रधानमंत्री के पद की स्थिति उसी प्रकार बन जाती है, जैसे उस पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति उसको बनाना चाहे।''

अभी तक भारत में वर्तमान प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी सहित 13 प्रधानमंत्री हुए है। 1950 में जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने थे जो उन्हें महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी केरूप में यह पद मिला था। कांग्रेस संगठन तथा संसदीय दल में उनकी स्थिति अचुनौतीपूर्ण थी। इसलिए 1952, 1957 और 1962 के चुनावों में कांग्रेस दल का नेता होने के कारण उन्हे यह पद बार–बार मिला। उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रधानमंत्री पद की रिक्तता को जल्दी भरने के लिए राष्ट्रपति ने उसे समय के वरिष्ठतम मन्त्री गुलजारी लाल नन्दा को प्रधानमंत्री नियुक्त किया, और नेतृत्व की लड़ाई लाल बहादुर शास्त्री और मोरारजी देशाई के बीच थी। इस प्रकार कांग्रेस हाईकमान के अनुसार आम सहमति शास्त्री जी के पक्ष में होने के कारण वे कांग्रेस संसदीय दल के नेता चुने गए और प्रधानमंत्री बने। जनवरी 1966 में शास्त्री जी के निधन के बाद उतराधिकारी के लिए संघर्ष पुनः शुरू हुआ। पहले की तरह गुलजारीलाल नन्दा को फिर प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। इसके बाद 24 जनवरी, 1966 से 24 मार्च, 1977 तक श्रीमति इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी और सबसे अधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली प्रधानमंत्री सिद्ध हुई। दिसम्बर, 1970 और जनवरी 1977 तथा 1979 में राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के लोकसभा को भंग करने के परामर्श को स्वीकार करने के कारण प्रधानमंत्री की स्थिति और भी मजबूत हुई।

मार्च 1977 के छठें लोकसभा चुनाव में नवीन दल, जनता पार्टी को लोकसभा में शानदार सफलता प्राप्त हुई, परन्तु जनता पार्टी विभिन्न राजनीतिक दलों से मिलकर बनी थी। इसलिए आमसहमति के लिए जननायक जयप्रकाश नारायण तथा जे०बी० कृपलानी जैसे आदरणीय राष्ट्रीय नेताओं ने मोरारजी देसाई को लोकसभा में संसदीय दल का नेता चुना और इस प्रकार पहली बार गैर–कांग्रेसी नेता प्रधानमंत्री बने। 1977–80 में अल्पमत सरकार के प्रधानमंत्री चरणसिंह की सिफारिश पर भारत में पुनः आम चुनाव हुए और इन्दिरा गांधी दोबारा प्रधानमंत्री बनी राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने 31 अकतूबर, 1984 को श्रीमती गांधी की निर्मम हत्या के बाद उनके पुत्र राजीव गांधी को प्रधानमंत्री बनाया और उन्होंने 2 दिसम्बर 1989 तक सक्रिय, लोकप्रिय तथा सफल प्रधानमंत्री केरूप में कार्य किया। 1989 के चुनाव में किसी दल को पूर्ण बहुमत न मिलने के कारण राजीव गांधी ने सरकार बनाने के निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में एक नया प्रयोग किया गया जिनके द्वारा वी० पी० सिंह ने अल्पमत जनता दल के नेता केरूप में सरकार बनाई और यह अव्यवहारिक प्रयोग वी० पी० सिंह के द्वारा त्यागपत्र देने के कारण केवल 11 महीने तक चला। इसके बाद जो प्रयोग किया गया वह अकल्पनीय और हास्यासपद होने के साथ संसदीय प्रणाली के नाम पर एक कंलक था। जिसके अन्तर्गत चन्द्रशेखर द्वारा नवगठित समाजवादी जनता पार्टी (मात्र 54 सासंद) ने सरकार बनाई और 7 महीने तक चली और फिर राष्ट्रपति ने चुनावों की घोषणा कर दी। 1991 के चुनाव में काग्रेस पार्टी बड़े दल केरूप में उभरी परन्तु पूर्ण बहुमत नहीं मिला और इसी बीच 21 मई, 1991 को कांग्रेस के वरिष्ठ नेता पी० वी० नरसिंहराव को प्रधानमंत्री बनाया गया। उनकी सरकार ने पूरे पांच साल तक काम किया। 1996 में किसी भी दल को बहुमत न मिलने के कारण भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल केरूप में उभरने पर श्री अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। यह सरकार मात्र 13 दिन चली और सरकार ने बिना विश्वास मत प्राप्त किए त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद 13 दलों के गठबन्धन सयुंक्त मोर्चा की सरकार देवगौड़ा के नेतृत्व में बनी। यह सरकार 1 जून, 1996 से 21 अप्रैल 1977 तक चली। इसके बाद पुनः सयुंक्त मोर्चा के नेता इन्द्रकुमार गुजराल के नेतृत्व में 21 अप्रैल से 19 मार्च, 1998 तक सरकार चली। फिर 19 मार्च 1998 को अटल बिहारी वाजपेयी ने दोबारा प्रधानमंत्री पद ग्रहण किया। इसके बाद तेहरवीं लोकसभा (1999)

के चुनाव में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन को पहले की अपेक्षा अधिक सीटें मिली और श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने तीसरी बार 13 अक्तूबर, 1999 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली और यही सरकार आज भी कार्यरत है।

1.5.5 निष्कर्ष

भारत में प्रधानमंत्री, कैबिनेटरूपी महल की आधार की आधारशिला होता है। यद्यपि संसदीय लोकतन्त्र में प्रधानमंत्री पद की स्थिति अत्यन्त सृदृढ़ तथा कभी–कभी निरंकुश दिखाई देती है किन्तु भारत में राजनीतिक अस्थिरता तथा गठबन्धन सरकारों के कारण प्रधानमंत्री का पद पूर्व की भांति अब अत्यधिक शक्ति सम्पन्न नहीं रह गया है। प्रधानमंत्री द्वारा सरकार बनाए रखने के लिए अब बार–बार मन्त्रिमण्डल में फेर–बदल करने पड़ते है जैसे अटल बिहारी सरकार ने 24 मई 2003 में ग्यारहवां फेर–बदल किया और कई मन्त्रियों को बाहर और कईयों को मन्त्रिमण्डल में शामिल किया जैसे अजीत सिंह को कृषि मन्त्रालय से बाहर कर राजनाथ सिंह को कृषि मन्त्रालय सौंपा गया।

1.5.6 मुख्य शब्दावली

- विशेषाधिकार
- गठबंधन
- आपातकाल
- विश्वास मत
- कैबिनेट

1.5.7 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की शक्तियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. क्या भारत का प्रधानमंत्री तानाशाह बन सकता है? टिप्पणी कीजिए।
3. गठबन्धन सरकार के बनने के बाद, प्रधानमंत्री की वास्तविक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन कीजिए।
4. भारत के प्रधानमंत्री के कार्यों व स्थिति का वर्णन कीजिए।

1.5.8 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D. D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D. D. Basu and B.Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C. R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.

- A. Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J.Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B. L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R. L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N. G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- A. Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W. H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- A. Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N. C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.